I.S.S.N. 0971-9024

अर्हत् वचन

ARHAT VACANA

वर्ष - 12, अंक - 1 जनवरी - मार्च 2000

Vol.-12, Issue-1 January-March 2000

भगवान ऋषभदेव निर्वाण महामहोत्सव अंक

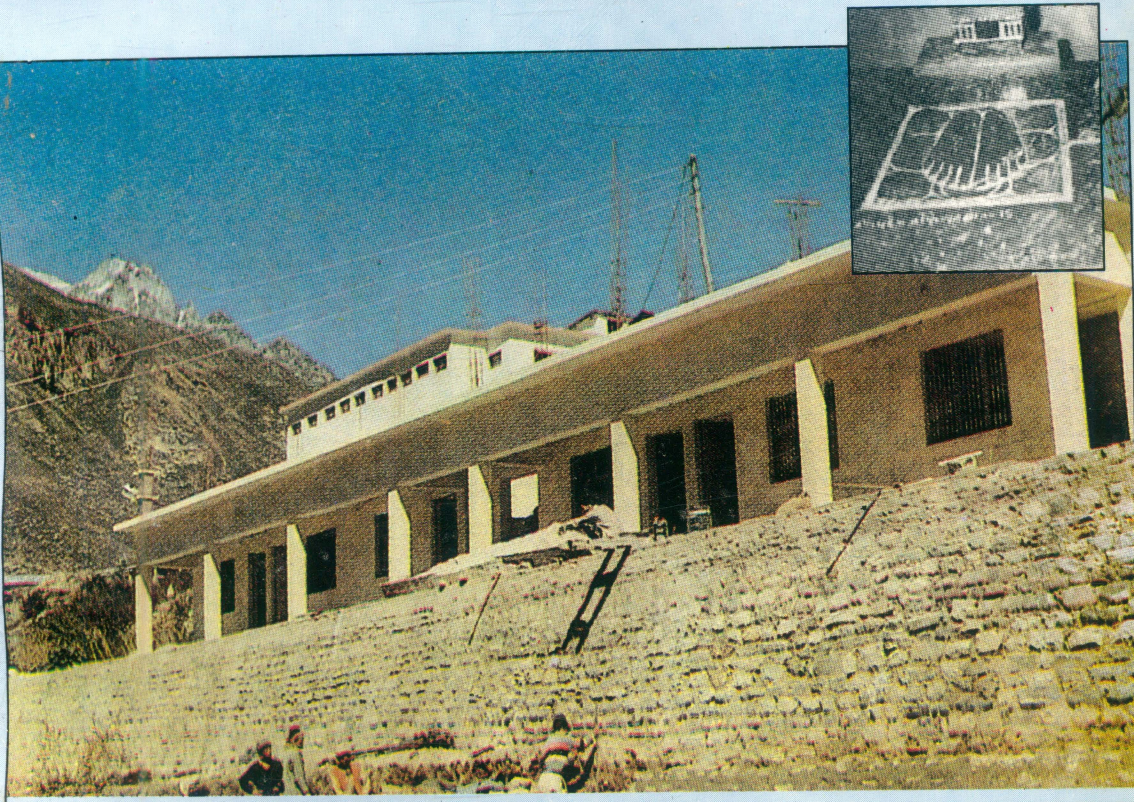

आदिनाथ आध्यात्मिक अहिंसा फाउण्डेशन, इन्दौर के तत्वावधान में ऋषभ निर्वाण भूमि कैलाश पर्वत के अंचल में अवस्थित बद्रीनाथ में विकसित ऋषभ निर्वाण स्थली में नवनिर्मित भवन
(इनसेट में स्थापित प्राचीन चरण)

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

KUNDAKUNDA JÑĀNAPĪTHA, INDORE

भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय महामहोत्सव उद्घाटन अवसर के चित्र

ऋषभ निर्वाण भूमि कैलाश पर्वत की प्रतिकृति के सम्मुख ऋषभ निर्वाण दिवस, माघ कृष्ण चतुर्दशी, 4 फरवरी 2000 को निर्वाण लाडू चढ़ाते प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी बाजपेयी। समीप हैं गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी एवं महोत्सव समिति के पदाधिकारीगण।

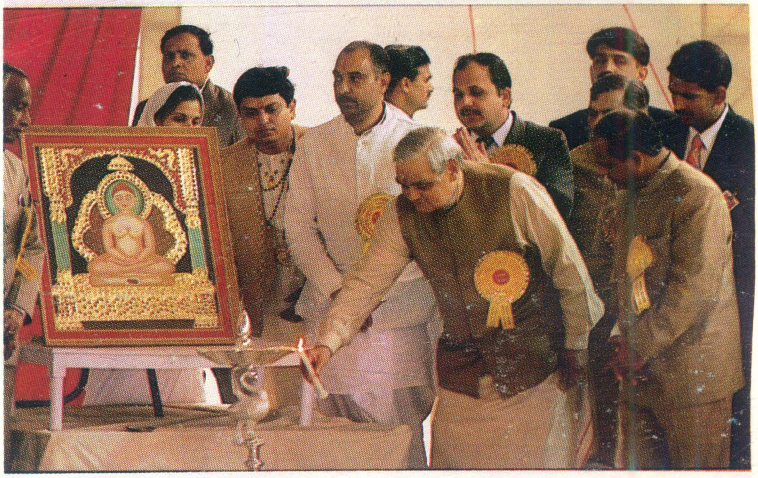

दीप दीपन कर भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव का शुभारम्भ करते हुए माननीय प्रधानमंत्रीजी - लालकिला मैदान, दिल्ली, 4.2.2000

माननीय प्रधानमंत्रीजी का माल्यार्पण द्वारा स्वागत करते हुए कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के सचिव डॉ.अनुपम जैन। मध्य में दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अध्यक्ष कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन।

I.S.S.N. - 0971-9024

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Journal of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE
(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 12, अंक 1
Volume 12, Issue 1

जनवरी - मार्च 2000
January - March 2000

मानद् - सम्पादक
डॉ. अनुपम जैन
गणित विभाग
शासकीय स्वशासी होल्कर विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर - 452 017

HONY. EDITOR
DR. ANUPAM JAIN
Department of Mathematics,
Govt. Autonomous Holkar Science College,
INDORE - 452017 INDIA

☎ (0731) 464074 (का.) 787790 (नि.), 545421 (ज्ञानपीठ) फैक्स : 0731 - 787790
E.mail : Kundkund@bom4.vsnl.net.in

प्रकाशक
देवकुमार सिंह कासलीवाल
अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर 452 001 (म.प्र.)

PUBLISHER
DEOKUMAR SINGH KASLIWAL
President - Kundakunda Jñānapīṭha
584, M.G. Road, Tukoganj,
INDORE - 452001 (M.P.) INDIA

☎ (0731) 545744, 545421 (O) 434718, 543075, 539081, 454987 (R)

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करते समय पत्रिका के सम्बद्ध अंक का उल्लेख अवश्य करें।

सम्पादक मंडल / Editorial Board

प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक - गणित एवं प्राचार्य
दीक्षा ज्वेलर्स के ऊपर,
554, सराफा,
जबलपुर - 482 002

Prof. Laxmi Chandra Jain
Retd. Professor - Mathematics & Principal
Upstairs Diksha Jewellers.
554, Sarafa,
Jabalpur - 482 002

प्रो. कैलाश चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक एवं अध्यक्ष
प्रा. - भा. इ. सं. एवं पुरातत्व विभाग,
विक्रम वि. वि., उज्जैन,
मोहन निवास, देवास रोड़,
उज्जैन - 456 006

Prof. Kailash Chandra Jain
Retd. Prof. & Head,
A.I.H.C. & Arch. Dept.,
Vikram University. Ujjain,
Mohan Niwas, Dewas Road,
Ujjain - 456 006

प्रो. राधाचरण गुप्त
सम्पादक - गणित भारती,
आर - 20, रसबहार कालोनी,
लहरगिर्द,
झांसी - 284 003

Prof. Radha Charan Gupta
Editor - Gaṇita Bhāratī,
R - 20, Rasbahar Colony,
Lehargird,
Jhansi - 284 003

प्रो. पारसमल अग्रवाल
प्राध्यापक - रसायन भौतिकी,
ओक्लाहोमा स्टेट वि.वि., अमेरिका
बी - 126, अग्रवाल सदन, प्रतापनगर,
चित्तौड़गढ़ (राज.)

Prof. Parasmal Agrawal
Prof. of Chemical Physics.
Oklohoma State University, OH - U.S.A
B - 126, Agrawal Sadan, Pratap Nagar,
Chittorgarh (Raj.)

डॉ. तकाओ हायाशी
विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान,
दोशीशा विश्वविद्यालय,
क्योटो - 610 - 03 (जापान)

Dr. Takao Hayashi
Science & Tech. Research Inst.,
Doshisha University,
Kyoto - 610 - 03 (Japan)

डॉ. स्नेहरानी जैन
पूर्व प्रवाचक - भेषज विज्ञान,
'छवि', नेहानगर, मकरोनिया,
सागर (म.प्र.)

Dr. Snehrani Jain
Retd. Reader in Pharmacy,
'Chhavi', Nehanagar, Makronia,
Sagar (M.P.)

सम्पादक / Editor

डॉ. अनुपम जैन
सहायक प्राध्यापक - गणित,
शासकीय होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,
'ज्ञानछाया', डी - 14, सुदामानगर,
इन्दौर - 452 009
फोन : 0731 - 787790

Dr. Anupam Jain
Asst. Prof. - Mathematics,
Govt. Holkar Autonomous Science College
'Gyan Chhaya', D - 14, Sudamanagar,
Indore - 452 009
Ph.: 0731 - 787790

सदस्यता शुल्क / SUBSCRIPTION RATES

	व्यक्तिगत INDIVIDUAL	संस्थागत INSTITUTIONAL	विदेश FOREIGN
वार्षिक / Annual	रु./Rs. 100=00	रु./Rs. 200=00	U.S. $ 25=00
आजीवन / Life Member	रु./Rs. 1000=00	रु./Rs. 1000=00	U.S. $ 250=00

पुराने अंक सजिल्द फाईलों में रु. 400.00/U.S. $ 50.00 प्रति वर्ष की दर से सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं।
सदस्यता शुल्क के चेक / ड्राफ्ट कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के नाम इन्दौर में देय **अरविन्दकुमार जैन**, प्रबन्धक - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर को ही प्रेषित करें। मार्च 2000 के बाद सदस्यता शुल्क में वृद्धि प्रस्तावित है।

वर्ष - 12, अंक - 1, जनवरी - मार्च 2000

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अनुक्रम / INDEX

सम्पादकीय - सामयिक सन्दर्भ 5
☐ अनुपम जैन

लेख / ARTICLE

भगवान ऋषभदेव 7
☐ गणिनी ज्ञानमती

जैन धर्म की प्राचीनता और ऋषभदेव 13
☐ संगीता मेहता

जैन धर्म पर डाक टिकटें 17
☐ सुधीर जैन

ऋग्वेद मूलत: श्रमण ऋषभदेव प्रभावित कृति है 21
☐ स्नेहरानी जैन

महामंत्र णमोकार : एक तात्विक एवं वैज्ञानिक विवेचन 29
☐ दयाचन्द जैन

हिन्दू एवं जैन आर्थिक चिन्तन : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में 39
☐ उदय जैन

जैन गणित के उद्धारक ; डा.हीरालाल जैन 43
☐ अनुपम जैन

अन्य ग्रहों पर जीवन 47
☐ हेमन्तकुमार जैन

जैन धर्मे आचारदृष्टि: 53
☐ संगीता मेहता

Colour - the Wonderful Charecteristic of Sound 61
☐ Muni Nandighosh Vijai

Indian Contributions to Mathematics with Special References to Misplaced Credits 67
☐ Anupam Jain

प्रतिभा परिचय 75

टिप्पणी / SHORT NOTE

उड़ीसा के सराक चक्रवाती विभीषिका के शिकार 77
☐ अभय प्रकाश जैन

विचारणीय बिन्दु 79
☐ अनिलकुमार जैन

आचार्य जिनदत्त सूरि 81
□ अनिलकुमार जैन

निगोदिया जीव 82
□ सुल्तानसिंह जैन

आख्यायें / REPORTS

मथुरा के जैन स्तूप व कंकाली का सांस्कृतिक वैभव 83
□ विजयकुमार जैन शास्त्री

डॉ. हीरालाल जैन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 85
□ कृष्णा जैन

तृतीय विराट राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी 87
□ गुणमाला जैन

पुस्तक समीक्षा / REVIEW

मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य 89
द्वारा संहितासूरि पं. नाथूलालजी शास्त्री
□ शिवचरनलाल जैन

गतिविधियाँ 90

मत - अभिमत 97

अगले अंकों में प्रकाश्य आलेख

Jaina Paintings in Tamilnadu	T. Ganesan
The Early Kadamabas and Jainism in karnataka	A. Sundara
हमारा शाकाहार, कितना शुद्ध? कितना अहिंसक?	सूरजमल जैन
डूँगरसिंह जैन धर्मानुयायी था?	रामजीत जैन, एडवोकेट
आधुनिक विज्ञान, 'वर्गणायें' तथा 'निगोद'	स्नेहरानी जैन
जैन साहित्य और पर्यावरण	जिनेन्द्रकुमार जैन
शंकराचार्य : व्यक्तित्व एवं गणितीय कृतित्व	दिपक जाधव
विदिशा का कल्पवृक्ष अंकित स्तम्भ - शीर्ष	गुलाबचन्द जैन
जैन आयुर्वेद	शकुन्तला जैन
णमोकार महामंत्र की जाप संख्या एवं पंचतंत्री वीणा	जयचन्द्र शर्मा
Rightful Exposition of Jainism in West	N.L. Jain
जैन आगम में पर्यावरण विज्ञान	सनतकुमार जैन
आकाश द्रव्य - एक उर्जीय रूप	विवेककुमार कोठिया
ज्ञान - विज्ञान का आविष्कारक : भारत	आचार्य कनकनन्दीजी
संस्कृत साहित्य के विकास में गणिनी ज्ञानमती का योगदान	आर्यिका चन्दनामती
ऋषभ निर्वाण भूमि - अष्टापद	उषा पाटनी

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सामयिक सन्दर्भ

*सकारात्मक चिन्तन एवं रचनात्मक कार्य ही समाज का निर्माण करने में सक्षम है, किन्तु दुर्भाग्य से वर्तमान में एक लहर चल रही है नकारात्मक चिन्तन एवं विरोधात्मक कार्यों की। इस युग के सर्वप्रमुख जैनाचार्य, **चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज** ने भी निन्दकों को अपने समीप रखने की प्रेरणा दी थी। उन्होने कहा - **'निन्दक नियरे राखिये ....।'** परन्तु निन्दा करने का अधिकार किसको है, यह भी विचारणीय है। आजकल **'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'** की तर्ज पर दूसरों को ज्ञान बांटने वालों की बहुलता होती जा रही है। आलोचना करना और निन्दा करना यह एक फैशन बनता जा रहा है। शायद प्रगतिवादी होने की यह पहली कसौटी बन गई है। अपने समर्पण, तप, ज्ञान, समय अथवा धन के माध्यम से समाज के निर्माण, संस्कृति के संरक्षण अथवा सामाजिक कुरीतियों के परिष्कार में जुटा व्यक्ति यदि किसी की आलोचना करता है तथा आलोचना के पीछे दृष्टि समाज के निर्माण की है, तो वह सहज स्वीकार्य है। आलोचना करना सदैव बड़ा आसान होता है किन्तु कुछ रचनात्मक करके देना बड़ा मुश्किल कार्य है। **राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज** ने कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली के रूप में प्राकृत भाषा के अध्ययन का एक सुन्दर केन्द्र विकसित करके समाज को दिया है। स्वयं पूज्य आचार्य श्री ने अपनी साधना से बचे समय का उपयोग कर जैन संस्कृति की ऐतिहासिकता के बारे में दुर्लभ तथ्यों का संकलन किया है। आज देश में जैनियों की भाषा शौरसेनी पर जिस सुनियोजित ढ़ंग से प्रहार किये जा रहे हैं उनका प्रामाणिक तथा सक्षमता से प्रतिकार पूज्य आचार्य श्री के निर्देशन में ही कुन्दकुन्द भारती द्वारा किया जा रहा है। इस संस्था की पत्रिका **'प्राकृत विद्या'** भी भाषा, सामग्री और प्रामाणिकता की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट है। मैं इसके संपादक, युवा विद्वान **डॉ. सुदीप जैन**, दिल्ली को एतदर्थ बधाई देना चाहूँगा। निश्चित ही यह एक रचनात्मक प्रवृत्ति है।*

*आदिवासी अंचलों में जैन संस्कृति के संवाहक सराक बंधुओं में उनके विस्मृत संस्कारों को पुनर्जीवित करने, उन्हें संस्कृति की मुख्य धारा में सम्मिलित करने, सराक क्षेत्र में विकीर्ण जैन संस्कृति के अवशेष मंदिरों, मूर्तियों, शिलालेखों के सर्वेक्षण, संरक्षण एवं प्रकाशन के लिये सघन प्रयास करने हेतु **उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज** के मार्गदर्शन में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन सराक ट्रस्ट तथा सराकोत्थान समितियाँ कार्यरत हैं। सराक बन्धुओं को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने हेतु सराक परिवारों को सिलाई मशीनों का वितरण, कुटीर उद्योगों की स्थापना हेतु युवकों को प्रशिक्षण, सराक बालकों को जैन संस्कृति से परिचित कराने हेतु हिन्दी, बंगला आदि भाषाओं में सरल, सुबोध जैन साहित्य उपलब्ध करने की कौन आलोचना कर सकता है। प्रश्न हमारी दृष्टि का है। यदि हम अच्छाई ढूंढ़ने निकलेंगे तो हमें बहुत सारी अच्छाइयाँ मिल जायेंगी। यह बात सत्य है कि समय के साथ जैन संघ में भी अनेक दोष समाविष्ट हो गये हैं, किन्तु केवल दोषों का रोना रोने एवं बार-बार हताशा की बात करने से नैराश्य ही बढ़ता है। मन से टूटी हुई तथा उत्साह विहीन समाज कुछ भी सार्थक करने में सक्षम नहीं होती। फलत: हमें सीमित दायरे में उचित मंच पर आलोचना तो करनी चाहिये किन्तु जन-जन में उत्साह जाग्रत करने हेतु सकारात्मक चिन्तन ही प्रचारित, प्रसारित करना चाहिये। सुधार की प्रक्रिया व्यक्ति से प्रारम्भ होती है। यदि थोड़े से लोग भी कुछ रचनात्मक करने का संकल्प करते हैं तो उससे समाज को कुछ न कुछ मिलता ही है। प्रखर आलोचक यदि सामाजिक जीवन में त्याग, समर्पण एवं सेवा का आदर्श उपस्थित करते हैं तो समाज*

सुधार की एक श्रृंखला शुरू होती है।

*प्रचार-प्रसार के इस युग में रचनात्मक कार्य करने वाले बंधुओं में पारस्परिक सम्पर्क को विकसित करने हेतु **तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ** ने 108 पृष्ठीय **'सम्पर्क'** शीर्षक डाइरेक्टरी का प्रकाशन किया है जिसमें जैन विद्या के अध्येताओं/जैन पत्र पत्रिकाओं/जैन शोध संस्थानों/जैन प्रकाशकों की अद्यतन सूची सम्पूर्ण पतों सहित प्रकाशित है। यह डाइरेक्टरी कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के कार्यालय में रु. 50.00 में उपलब्ध है।*

*समाज में प्रत्येक रूचि के व्यक्ति के करने के लिये बहुत काम हैं, बड़ी बात तो नहीं किन्तु जनगणना के आंकड़ें बताते हैं कि आज समाज में निरक्षर भी हैं। उनमें आत्मविश्वास पैदा करने के लिये तथा उन्हें सम्मानजनक जीवन जीने का अवसर दिलाने हेतु महज कुछ लोगों की जरूरत है जो समय देकर इन निरक्षरों को साक्षर बनाकर ज्ञानदान का असीम पुण्य अर्जित कर सके। राष्ट्र और समाज की सेवा तो होगी ही। हमारे परिवार में बच्चों को जैनधर्म के बारे में गलत जानकारियाँ पढ़ाई जा रही हैं और हम मौन हैं। 23 जैन तीर्थंकरों के अस्तित्व को नकारा जा रहा है, उन्हें कपोल कल्पित बताया जा रहा है और हम मौन है। एक परिपक्व दर्शन और धर्माचरण की सुदीर्घ परम्परा को झुठलाते हुए उसे किसी एक धर्म की शाखा अथवा ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व की सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया रूप में जन्मा धर्म या उपासना पद्धति के रूप में निरूपित किया जा रहा है और हम मौन हैं। इस मौन को भंग करने हेतु जन-जन को जैन धर्म की प्राचीनता, 24 तीर्थंकरों की सुस्थापित परम्परा, भगवान ऋषभदेव द्वारा दिये गये षट्कर्मों के उपदेश एवं उसकी अन्तर्निहित भावना के व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु **गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी** की प्रशस्त प्रेरणा से एवं उनके ही मार्गदर्शन में समाज द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भगवान ऋषभदेव निर्वाण महामहोत्सव का आयोजन किया जा रहा है जिसका उद्घाटन देश के प्रधानमंत्री **माननीय श्री अटलबिहारी बाजपेयीजी** द्वारा सम्पन्न हो चुका है। उद्घाटन अवसर पर उनके द्वारा दिया गया उद्बोधन इसी अंक में पृ. 91, 92 पर पठनीय है। यह सकारात्मक सोच के आधार पर किया गया रचनात्मक कार्य है इससे जन-जन में जैनधर्म, जैन संस्कृति, जैन परम्परा का प्रचार होगा। इससे जैन धर्म के सिद्धान्तों की आवश्यकता, उपयोगिता और प्रासंगिकता को जानकर जनता में इसके प्रति सम्मान बढ़ेगा। इस कार्य से सबका हित जुड़ा है, किसी का भी विरोध नहीं है। साधुओं को ऐसे ही कार्य हस्तगत करना चाहिये। **मुनि श्री सुधासागरजी महाराज** की प्रेरणा से भगवान ऋषभदेव एवं भगवान महावीर की लन्दन म्यूजियम में सुरक्षित 2000 वर्ष प्राचीन मूर्ति के चित्र एवं विश्वविख्यात दार्शनिक **सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णन** के जैनधर्म की प्राचीनता विषयक विचार से युक्त लेमिनेटेड चित्र दसियों हजार की तादाद में भारत के कोने-कोने में पहुँचाये गये। यह कार्य प्रशंसनीय है। मेरा सभी से अनुरोध है कि वे अपने ज्ञान, प्रतिभा एवं क्षमता का उपयोग ऐसे कार्यों में जरूर करें जिससे समाज का कुछ लाभ हो, जैन संस्कृति का मान बढ़े, मानवता का कल्याण हो। परस्पर आलोचना, प्रत्यालोचना, आधारहीन अनर्गल बातों के प्रचार से बचकर हमें अपनी शक्ति का उपयोग सृजन में करना है। यही युग की आवश्यकता है। यदि हमनें इस ओर दृष्टिपात नहीं किया तो जैनत्व की अपरिमित क्षति होगी।*

अर्हत् वचन के प्रस्तुत अंक में हमनें भगवान ऋषभदेव से संबंधित 4 आलेख प्रकाशित किये हैं। इस निर्वाण महामहोत्सव वर्ष में हम और भी सामयिक आलेख देते रहेंगे। प्रस्तुत अंक पर सुधी पाठकों की प्रतिक्रियायें सादर आमंत्रित हैं। मैं संपादक मंडल के सभी माननीय सदस्यों तथा विद्वान लेखकों के प्रति भी उनके सहयोग हेतु धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

डॉ. अनुपम जैन

15.2.2000

वर्ष - 12, अंक - 1, जनवरी 2000, 7 - 12

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

भगवान ऋषभदेव

■ गणिनी ज्ञानमती *

मध्यलोक में सर्वप्रथम द्वीप का नाम 'जम्बूद्वीप' है। इसके दक्षिण भाग में भरत क्षेत्र है, इसमें छह खण्ड हैं। इनमें प्रथमतः मध्यभाग में आर्यखण्ड है, इसमें छह काल परिवर्तन होता रहता है।

षट्काल परिवर्तन -

व्यवहार काल के दो भेद हैं - उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। जिसमें मनुष्यों के बल, आयु और शरीर का प्रमाण क्रम - क्रम से बढ़ता जावे उसे उत्सर्पिणी और जिसमें क्रम - क्रम से घटता जावे उसे अवसर्पिणी काल कहते है, इन दोनों के छह - छह भेद होते हैं -

अवसर्पिणी काल के भेद -

1. सुषभा - सुषमा
2. सुषमा
3. सुषमा - दु:षमा
4. दु:षमा - सुषमा
5. दु:षमा
6. दु:षमा - दु:षमा अथवा अति दु:षमा

उत्सर्पिणी काल के भी इनसे विपरीत छह भेद होते हैं -

1. दु:षमा - दु:षमा
2. दु:षमा
3. दु:षमा - सुषमा
4. सुषमा - दु:षमा
5. सुषमा
6. सुषमा - सुषमा

अवसर्पिणी काल का प्रथम सुषमा - सुषमा काल चार कोड़ाकोड़ी सागर का है, दूसरा काल तीन कोड़ाकोड़ी सागर, तीसरा काल दो कोड़ाकोड़ी सागर, चौथा काल ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर, पाँचवा काल इक्कीस हजार वर्ष का और छठा काल भी इक्कीस हजार वर्ष का होता है। उत्सर्पिणी काल में भी दु:षमा - दु:षमा काल इक्कीस हजार वर्ष का, इसी तरह पूर्ववत् उल्टा क्रम लगा लेना चाहिये।

इस प्रकार ये दोनों काल दश - दश कोड़ाकोड़ी सागर के होने से बीस कोड़ाकोड़ी सागर का एक 'कल्पकाल' माना गया है।

प्रथम, द्वितीय और तृतीय कालों में भोगभूमि की व्यवस्था रहती है तथा चतुर्थ, पंचम और छठे कालों में कर्मभूमि की व्यवस्था हो जाती है।

भोगभूमि व्यवस्था -

भोगभूमि में दश प्रकार के कल्पवृक्षों से भोगोपभोग सामग्री प्राप्त होती है - **मद्यांग (पानांग), वादित्रांग, भूषणांग, मालांग, दीपांग, ज्योतिरंग, गृहांग, भोजनांग, भाजनांग और वस्त्रांग।** ये वृक्ष अपने - अपने नामों के अनुसार ही फल प्रदान करते रहते हैं। मद्यांग जाति के कल्पवृक्ष अमृत के समान अनेक प्रकार के पेय रस देते हैं। वादित्रांग वृक्ष दुंदुभि आदि बाजे देते हैं। भूषणांग कल्पवृक्ष मुकुट, हार आदि देते हैं। मालांग कल्पवृक्ष माला आदि सुगंधित पुष्प देते हैं। दीपांग कल्पवृक्ष मणिमय दीपकों को देते हैं। ज्योतिरंग कल्पवृक्ष सदा प्रकाश फैलाते रहते हैं। गृहांग वृक्ष ऊँचे - ऊँचे महल देते हैं। भोजनांग वृक्ष अमृत सदृश भोजन सामग्री देते हैं। भाजनांग वृक्ष थाली, गिलास आदि पात्र देते हैं और वस्त्रांग वृक्ष अनेक

* जैन श्रमणसंघ की वरिष्ठतम आर्यिका, सम्प्रति दिल्ली में साधनारत। सामान्य सम्पर्क - दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर - 250 404 (मेरठ)

प्रकार के वस्त्र प्रदान करते हैं। इन भोगभूमि मे युगलिया पुत्र-पुत्री जन्म लेते हैं। उसी क्षण माता-पिता की मृत्यु हो जाती है और वे युगलिया ही पति-पत्नी का रूप ले लेते हैं।

चौदह कुलकर -

वर्तमान में अवसर्पिणी काल चल रहा है इसे 'हुण्डावसर्पिणी' भी कहा है क्योंकि इसमें कुछ अघटित घटनाएँ होती रहती हैं जैसे प्रथम तीर्थंकर का तृतीय काल में हो जाना इत्यादि। इसमें तृतीय काल के अन्त में जब पल्य का आठवाँ भाग शेष रह गया था तब क्रमशः चौदह कुलकर उत्पन्न हुए हैं। उनके नाम हैं - **प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान, यशस्वी, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित् और नाभिराज।**

जैन हरिवंशपुराण में आया है कि इनमें से बारहवें कुलकर मरुदेव ने अकेले पुत्र को जन्म देकर 'प्रसेनजित्' यह नाम रखा था, तभी से इस भूमि में युगलिया की परम्परा समाप्त हो गई थी। इनका विवाह प्रधान अर्थात् उत्तम कुल की कन्या के साथ सम्पन्न हुआ था। इन्होंने भी अकेले एक पुत्र को जन्म देकर उसका 'नाभिराज' यह नामकरण किया था।

महापुराण में लिखा है कि - इन्द्र ने राजा 'नाभिराज' का विवाह शुद्ध कुल की कन्या 'मरूदेवी' के साथ कराया था। उस समय इस आर्यखण्ड की भूमि में एक गृहांग कल्पवृक्ष-पृथ्वी निर्मित इक्यासी खण्ड का रत्नमयी प्रासाद-राजमहल रूप से स्थित हो गया था जिसका नाम **'सर्वतोभद्र'** था। ऐसा हरिवंशपुराण में कहा है -

महाराजा नाभिराज के पुण्य प्रभाव से ही सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से देवों ने वहाँ एक **'अयोध्या'** नगरी की रचना कर दी। देवों ने शुभ-मुहूर्त में राजमहल में पुण्याहवाचन करके उस महल में नाभिराज और मरूदेवी को प्रवेश कराया था। छठे काल के अन्त में जब प्रलयकाल आता है तब उस प्रलय में यहाँ आर्यखण्ड में एक हजार योजन नीचे तक की भूमि नष्ट हो जाती है। उस काल में अयोध्या नगरी स्थान के सूचक नीचे चौबीस कमल देवों द्वारा बना दिये जाते हैं। उन्हीं चिन्हों के आधार से देवगण पुनः उसी स्थान पर अयोध्या की रचना कर देते हैं अतः यह अयोध्या नगरी शाश्वत अर्थात् अनादिनिधन मानी गई है।

वैदिक ग्रन्थों में भी अयोध्या की विशेष महिमा बताई है। 'अथर्ववेद' में इसे आठ चक्र और नवद्वारों से शोभित कहा है। 'रूद्रयामल' ग्रन्थ में इस अयोध्या को विष्णु भगवान का मस्तक कहा है एवं बाल्मीकि रामायण में मनु द्वारा निर्मित बारह योजन लम्बी माना है।

भगवान ऋषभदेव का गर्भ कल्याणक -

छह माह बाद भगवान ऋषभदेव 'सर्वार्थसिद्धि' नामक विमान से 'अहमिन्द्र' अवस्था से च्युत होकर यहाँ माता मरूदेवी के गर्भ में आने वाले हैं, सौधर्म इन्द्र ने ऐसा जानकर कुबेर को आज्ञा दी - 'हे धनपते! तुम अयोध्या में जाकर माता मरूदेवी के आंगन में रत्नों की वर्षा प्रारम्भ कर दो।' उसी दिन से कुबेर ने प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ प्रमाण उत्तम-उत्तम पंचवर्णी रत्न बरसाना शुरु कर दिया।

एक दिन महारानी मरूदेवी ने पिछली रात्रि में ऐरावत हाथी, श्वेत बैल आदि उत्तम-उत्तम

सोलह स्वप्न देखे। प्रात: पति देव के मुख से 'तुम्हारे गर्भ में तीर्थंकर पुत्र अवतरित होंगे' ऐसा सुनकर महान हर्ष का अनुभव किया।

जब इस अवसर्पिणी काल के तृतीय काल में चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष और साढ़े आठ माह शेष रह गये थे तब आषाढ़ कृष्णा द्वितीया के दिन भगवान का (अहमिन्द्र के जीव का) गर्भागम हुआ है। उसी दिन इन्द्रों ने अपने दिव्य ज्ञान से भगवान का गर्भावतार जानकर असंख्य देवों के साथ आकर महाराजा नाभिराय और महारानी मरूदेवी का अभिषेक करके वस्त्रालंकार आदि से उनका सम्मान करके प्रभु का जन्मकल्याणक मनाया। उधर इन्द्र की आज्ञा से **श्री, ह्रीं, धृति, कीर्ति, बुद्धि** और **लक्ष्मी** आदि देवियाँ माता की सेवा करने लगीं।

जन्म कल्याणक -

पन्द्रह माह तक कुबेर द्वारा रत्नवृष्टि की जा रही थी तभी चैत्र कृष्णा नवमी को सूर्योदय के समय माता मरूदेवी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। उसी क्षण स्वर्ग में इन्द्रों के आसन कम्पायमान होने से इन्द्रों ने शची इन्द्राणी व असंख्य देवगणों के साथ आकर जन्मजात बालक को ऐरावत हाथी पर ले जाकर सुमेरू - पर्वत की पांडुकशिला पर विराजमान किया एवं 1008 कलशों से क्षीरसागर के जल से जन्मजात भगवान का अभिषेक किया। पुन: जिनबालक को वस्त्राभरण से सुसज्जित कर 'ऋषभदेव' इस नाम से अलंकृत कर बालक को अयोध्या में लाये और माता - पिता को सौंपकर वहाँ आनन्द नाम का नृत्य करके सभी को हर्षित कर दिया।

ऋषभदेव का गार्हस्थ जीवन -

देव बालकों के साथ क्रीड़ा करते हुए भगवान शैशव अवस्था को पारकर युवावस्था में आ गये। पिता नाभिराज के निवेदन से जब श्री ऋषभदेव ने विवाह करना स्वीकार कर लिया तब इन्द्र की अनुमति से पिता ने कच्छ - महाकच्छ की बहनों यशस्वती और सुनन्दा के साथ महामहोत्सवपूर्वक श्री ऋषभदेव का विवाह कर दिया। यशस्वती ने भरत आदि सौ पुत्र एवं ब्राह्मी पुत्री को तथा सुनन्दा ने बाहुबली पुत्र एवं सुन्दरी कन्या को जन्म दिया। वैदिक ग्रन्थों में भी महाराज नाभिराज एवं मरूदेवी के पुत्र भगवान ऋषभदेव को एवं उनके भरतादि सौ पुत्रों को स्वीकारा है तथाहि - **'नमो भगवते ऋषभाय तस्मै'।**

इसी प्रकार कुलकरों के नाम भी कुछ अन्तर से मनुस्मृति में आये हैं - 'कुल के आदि बीज प्रथम विमलवाहन, दूसरे चक्षुष्मान, तीसरे यशस्वी, चौथे अभिचन्द्र, पाँचवें प्रसेनजित, छठे मरूदेव और सातवें नाभिराज, भरतक्षेत्र में ये कुलकर हुए हैं। पुन: सातवें कुलकर नाभिराज से मरूदेवी के गर्भ से आठवें अवतार 'ऋषभदेव' हुए हैं। **भागवत में भी ऋषभदेव को विष्णु का आठवाँ अवतार माना है।**

वायुपुराण में कहा है - 'नाभिराज की पत्नी मरूदेवी ने ऋषभ पुत्र को जन्म दिया। ऋषभदेव ने सौ पुत्रों को जन्म दिया, उसमें भरत पुत्र बड़े थे।'

जैन महापुराण में लिखा है - 'किसी समय भगवान ऋषभदेव राजसिंहासन पर आरूढ़ थे, ब्राह्मी - सुन्दरी दोनों आईं। पिता ने बड़े प्यार से दोनों पुत्रियों को दायीं - बांयी ओर बिठाकर अ, आ .... आदि अक्षरलिपि और 1, 2 .... आदि अंकविद्या को पढ़ाकर युग की आदि में विद्याओं को जन्म दिया। पुन: भरत आदि सभी सौ पुत्रों को सम्पूर्ण विद्याओं और कलाओं में निष्णात कर दिया। प्रभु ने पुत्रों के यज्ञोपवीत आदि संस्कार भी किये थे।

महाराज ऋषभदेव ब्राह्मी एवं सुन्दरी को विद्यादान देते हुए

जब कल्पवृक्षों ने प्रजा को भोजन, वस्त्र आदि देना बन्द कर दिया तब प्रजा की करूण पुकार को सुनकर प्रभु ने इन्द्र का स्मरण किया। इन्द्र ने आकर प्रभु की आज्ञा प्राप्त कर देवों के द्वारा ग्राम, नगर, देश आदि की रचना कराकर महल, मकान आदि बनवाकर उनमें प्रजा को यथास्थान बसा दिया। उसी समय अयोध्या में मध्य में एक और चारों दिशाओं में एक-एक ऐसे पाँच जिनमन्दिरों का निर्माण देवों के द्वारा किया गया था।

अनन्तर प्रभु ने प्रजा को **असि** - तलवार आदि धारण कर जनता की रक्षा करना, **मसि** - लिखाई आदि करके आजीविका चलाना, **कृषि** - बीज बो कर खेती करके धान्य उगाना, बगीचे लगाना आदि **विद्या** - विद्या का दान देना, **वाणिज्य** - व्यापार करना और **शिल्प** - मकान आदि का निर्माण करना, इन षट् क्रियाओं का उपदेश दिया। भोजन बनाने की, गन्ने को पेलकर रस निकालने की, सूत कातकर कपड़े बुनने आदि की क्रियाएँ भी सिखाईं।

उसी समय प्रभु ने लोकव्यवहार चलाने के लिये यथायोग्य क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों की व्यवस्था बनाई थी तथा अपनी-अपनी जाति में विवाह विधि करने की परम्परा भी बताई थी। ब्राह्मण वर्ण की स्थापना चक्रवर्ती भरत के द्वारा हुई है।

किसी समय इन्द्रराज ने महाराज नाभिराज की अनुमति लेकर प्रभु का राज्याभिषेक कर दिया। अनन्तर भगवान ने अनेक राजा, महाराजा आदि बनाकर उन्हें उत्तम राजनीति का उपदेश दिया इसीलिये प्रभु **'आदिब्रह्मा'** कहलाये।

दीक्षा कल्याणक -

बहुत वर्षों के बाद राज्यसभा में एक दिन इन्द्र के द्वारा भक्ति-नृत्य का आयोजन चल रहा था। नृत्य करते-करते नीलांजना अप्सरा की आयु समाप्त हो गई। तत्क्षण इन्द्र ने उसी जगह दूसरी अप्सरा उपस्थित कर दी। नृत्य बराबर चालू रहा। साधारण लोग कुछ भी नहीं समझ सके किन्तु भगवान ने अपने दिव्य अवधिज्ञान से यह सब जान लिया। अतः वे जीवन, यौवन, राज्य आदि को क्षणभंगुर समझ कर विरक्त हो गये। उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर प्रभु के वैराग्य की प्रशंसा की। भगवान ऋषभदेव अपने बड़े पुत्र भरत को राज्य सौंपकर देवों द्वारा लाई गई सुदर्शना नाम की पालकी में बैठे। सबसे पहले

पालकी को राजाओं ने, पुनः विद्याधरों ने, अनन्तर देवों ने उठाई और प्रभु को लेकर सिद्धार्थक वन में पहुँचे। वहाँ प्रभु ने 'वटवृक्ष' के नीचे अपने केशों का लोच करके सर्व वस्त्राभूषण त्यागकर **जैनेश्वरी दीक्षा** ले ली और छह माह का योग लेकर ध्यान में स्थित हो गये, तभी से उस स्थान का **'प्रयाग'** यह नाम प्रसिद्ध हो गया।

भगवान के साथ चार हजार राजाओं ने दीक्षा ली थी। वे सब एक-दो माह में ही भूख-प्यास से व्याकुल हो वन के फल खाने लगे एवं झरने का पानी पीने लगे। तब वनदेवता ने उन्हें इस दिगम्बर मुद्रा में ऐसी स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने से रोक दिया अतः उन सभी साधुओं ने नाना वेश धारण कर लिये।

प्रभु की आहार चर्या -

छह माह के ध्यान के अनन्तर प्रभु आहार के लिये निकले। उन दिनों किसी को भी दिगम्बर जैन मुनियों को आहार देने की विधि मालूम नहीं थी अतः प्रभु को छह माह और निकल गये। भगवान एक वर्ष उनतालीस दिन बाद हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ युवराज श्रेयांस को जाति स्मरण होने से आहारदान की विधि ज्ञात हो गई। अतः अपने भाई सोमप्रभ के साथ उन्होंने प्रभु का पड़गाहन कर नवधाभक्ति करके उन्हें करपात्र में इक्षुरस का आहार दिया। पड़गाहन करना, उच्चासन देना, पाद प्रक्षालन करना, पूजा करना, नमस्कार करना, मन-वचन-काय और भोजन की शुद्धि कहना, ये **'नवधा भक्ति'** कहलाती है।

आहार के समय देवों ने श्रेयांसकुमार के आंगन में पंचाश्चर्य वृष्टि की थी - पुष्पवृष्टि, गंधोदकवृष्टि, रत्नवृष्टि, देवदुंदुभि और जयजयकारा ये पंचाश्चर्य कहलाते हैं। उस दिन वैशाख शुक्ल तीज थी जो कि आज तक भी **'अक्षय तृतीया पर्व'** के नाम से प्रसिद्ध है।

केवलज्ञान कल्याणक -

एक हजार वर्ष के तपश्चरण के बाद प्रभु को 'पुरिमतालपुर' के उद्यान में वटवृक्ष के नीचे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। उसी क्षण इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने पृथ्वी से 5000 धनुष (20000 हाथ) ऊपर आकाश में अधर दिव्य समवसरण की रचना कर दी। इन्द्रादि देवों ने आकर प्रभु का केवलज्ञान महोत्सव मनाकर महती पूजा की। इसी नगर के राजा ऋषभसेन जो कि भगवान के तृतीय पुत्र थे, उन्होंने आकर प्रभु के पास दीक्षा लेकर प्रथम गणधर का पद प्राप्त कर लिया। प्रभु की बड़ी पुत्री ब्राह्मी ने आर्यिका दीक्षा लेकर गणिनी पद प्राप्त कर लिया।

प्रभु के समवसरण में (1) मुनिगण, (2) कल्पवासिनी देवियाँ, (3) आर्यिकाएँ एवं श्राविकाएँ, (4) ज्योतिषी देवियाँ, (5) व्यन्तर देवियाँ, (6) भवनवासिनी देवियाँ, (7) भवनवासी देव, (8) व्यन्तर देव, (9) ज्योतिषी देव, (10) कल्पवासी देव, (11) चक्री आदि मनुष्यगण और (12) पशुगण, ये सभी क्रम से बारह सभाओं में बैठकर प्रभु का उपदेश सुनते थे।

प्रभु की दिव्यध्वनि 718 भाषाओं में खिरती थी जिसे सभी भव्यगण अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते थे अतः इसे 'सर्वभाषामयी' भी कहते हैं।

निर्वाण कल्याणक -

जब तृतीय काल में तीन वर्ष, साढ़े आठ माह शेष रह गये तब प्रभु ने कैलाश पर्वत पर योगनिरोध कर सम्पूर्ण कर्मों का नाश कर मोक्ष प्राप्त कर लिया। अब वे अनन्त-अनन्तकाल तक वहीं सिद्धशिला पर लोक के अग्रभाग पर विराजमान रहेंगे, कभी भी संसार में वापिस

नहीं आयेंगे, वे जन्म - मरण के दु:खों से छूटकर अनन्तज्ञानी और अनन्तसुखी हो गये हैं।

इसी प्रकार से चतुर्थ काल में दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ से लेकर श्री वर्द्धमान स्वामी (महावीर स्वामी) तक चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। अभी पाँचवां काल चल रहा है, आगे छठा काल आयेगा।

बौद्ध दर्शन के आचार्य धर्मकीर्ति लिखते हैं - **'प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी ये दिगम्बर धर्म के उपदेष्टा सर्वज्ञ भगवान हुए हैं।'**

भरत सम्राट के नाम से भारतवर्ष -

भगवान के प्रथम पुत्र भरत के नाम से ही इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा है, ऐसा वैदिक ग्रन्थ भागवत में, मार्कण्डेय पुराण, वायुपुराण, नृसिंहपुराण, वराहपुराण, लिंगपुराण, विष्णुपुराण, नारदपुराण, शिवपुराण आदि ग्रन्थों में उपलब्ध है।

भगवान ऋषभदेव की मूर्तियाँ -

वर्तमान में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की सर्वप्राचीन और सबसे बड़ी मूर्ति बड़वानी तीर्थक्षेत्र पर है जो कि चौरासी फुट ऊँची खड्गासन है। लंदन के म्यूजियम में भी भगवान ऋषभदेव एवं महावीर स्वामी की मूर्तियाँ उपलब्ध हैं।

इन ऋषभदेव के श्री आदिनाथ, वृषभदेव, पुरूदेव आदि अनेक नाम हैं। पुराणों में लिखा है कि अड़सठ तीर्थों की यात्रा करने से जो फल प्राप्त होता है, भगवान आदिनाथ के स्मरण मात्र से वह फल प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार जैनेतर वेदों, पुराणों में भी भगवान ऋषभदेव की महिमा गाई गई है।

ऐसे भगवान ऋषभदेव हम सभी को उत्तम सुख प्रदान करें, यही प्रार्थना है।

अनन्त भगवंतों का अस्तित्व -

अनन्तों उत्सर्पिणी - अवसर्पिणी काल के प्रत्येक चतुर्थ काल में चौबीस - चौबीस तीर्थंकर होते रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे तथा तीर्थंकरों के अतिरिक्त भी अनेक महापुरुष कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करते रहते हैं, वे भी भगवान कहलाते हैं जैसे कि भरत, रामचन्द्र, हनुमान आदि। अत: जैन धर्म के अनुसार अनन्तों भगवान माने गये हैं।

जैन धर्म -

जो कर्मों को जीते वो 'जिन' हैं, उसके उपासक 'जैन' कहलाते हैं इसलिये जैन धर्म किसी के द्वारा स्थापित नहीं किया गया है प्रत्युत् अनादि अनन्त है।

जैन धर्म का मूलमंत्र णमोकार महामंत्र है, इसे अपराजित मंत्र भी कहते हैं।

णमोकार मंत्र -

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

यह महामंत्र सर्व पापों का नाश करने वाला है और सर्व मंगलों में पहला मंगल है, अत: इस महामंत्र को हमेशा जपते रहना चाहिये।

प्राप्त - 19.12.99

वर्ष - 12, अंक - 1, जनवरी 2000, 13 - 16

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन धर्म की प्राचीनता और ऋषभदेव *

■ संगीता मेहता **

प्रागैतिहासिक तथा जीवन्त धर्म और दर्शन की परम्पराओं में जैन धर्म का विशिष्ट स्थान है। मानवीय संस्कृति के सूत्रधार आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ही जैन धर्म के संस्थापक हैं। सिन्धु घाटी में उत्खनन से प्राप्त मुद्राओं में वृषभ का चिह्न आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का ही प्रतीक है। भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम ग्रंथ वेदों और वैदिक पुराणों में प्राप्त प्रमाण तथा मोहजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त अवशेष इस बात के परिचायक हैं कि उस समय जैन धर्म का अस्तित्व जन - जन में पूर्णरूप से व्याप्त था। पुरातत्त्व साहित्य तथा इतिहास में अनेक ऐसे साक्ष्य हैं, जिनसे जैन धर्म की प्राचीनता निर्विवाद है।

जैन पुरातत्त्व के तथ्य सर्वप्रथम मोहन - जोदड़ो की खुदाई से प्राप्त हुए हैं जिसने जैन धर्म की प्राचीनता को आज से 5000 वर्ष पूर्व धकेल दिया है।[1] मोहन - जोदड़ो से प्राप्त सीलों में उत्कृष्ट कला तथा जैन संस्कृति के विषयों का सफल संयोजन है, जो भारत सरकार के केन्द्रीय पुरातात्त्विक संग्रहालय में संरक्षित है।[2] इसमें दाँयी ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में ऋषभदेव हैं जिनके शिरोभाग पर एक त्रिशूल है, पास में राजसी ठाठ में उष्णीषधारी ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत अंजली बद्ध नतमस्तक हैं, उनके पीछे वृषभ (बैल) है, अधोभाग में सात प्रधानामात्य हैं जो तत्कालीन राजसी गणवेश में पदानुक्रम से पंक्तिबद्ध हैं।

इसी सील में उत्कीर्ण कायोत्सर्ग मुद्रा जैनों की अपनी लाक्षणिकता है। त्रिशूल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय का सूचक है। वृषभ (बैल) ऋषभदेव का चिह्न है।

सिन्धुघाटी से प्राप्त कुछ सीलों पर जैन संस्कृति के प्रतीक चिह्न हैं जैसे - स्वस्तिक[3], कल्पवृक्ष[4] तथा त्रिशूल[5]।सिन्धु घाटी के लोक जीवन में भी स्वस्तिक एक मांगलिक प्रतीक था। जैनों में यह स्वस्तिक विशेष पूज्य है तथा जैन जीव सिद्धान्त का प्रतीक है (जीव की चार गति नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव)। स्वस्ति का अर्थ कल्याण भी है। त्रिशूल रत्नत्रय का प्रतीक है और कल्पवृक्ष ऋषभदेव की कायोत्सर्ग मूर्ति के परिवेष्टन के रूप में उत्कीर्ण है।

इन सीलों में जैन विषय और पुरातत्त्व रूपक के माध्यम से समायोजित है जो पुरातत्त्व, इतिहास और परम्परा की दृष्टि से महत्वपूर्ण ही नहीं, अपितु प्रतिनिधि निधि भी है।

सिन्धु घाटी की लिपि एवं अवशेषों की गवेषणा से जैन संस्कृति के नित नवीन तथ्य प्राप्त हो रहे हैं। बिहार के प्रशासकीय अधिकारी श्री निर्मलकुमार वर्मा ने सिन्धु लिपि का अध्ययन करके बताया कि प्राकृत भाषा सिन्धु सम्यता की भाषा थी जिसकी लिपि बाद में बदल गई। सिन्धु घाटी की चित्रलिपि से प्राकृत भाषा के शब्दों के अर्थ मिलते हैं।[6] यह ज्ञातव्य है कि जैनाचार्यों की उपदेश एवं लेखन भाषा भी मूलत: शौरसेनी प्राकृत एवं अर्धमागधी ही रही है।

दो हजार वर्ष पूर्व राजा कनिष्क तथा हुनिष्क आदि के शासन में खुदाई से प्राप्त

* कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा आयोजित जैन विद्या संगोष्ठी (12 - 13 मार्च 1996) में प्रस्तुत।
** सहायक प्राध्यापक - संस्कृत, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर।
सम्पर्क - ई.एच. 37, स्कीम नं. 54, इन्दौर - 452 001

मथुरा संग्रहालय में संरक्षित शिलालेख इस बात के परिचायक हैं कि ऋषभदेव आदि पुरुष आदि तीर्थंकर थे और जिन्हें जैनियों ने मूर्ति लिपि के माध्यम से साकार किया था।[7]

विदेशों में भी अनेक स्थानों पर खुदाई में तीर्थंकरों की विभिन्न मुद्राओं में मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं तथा वहाँ की अनुश्रुतियों में प्रसिद्ध नाना घटनाएँ भी इस तथ्य का विशद उद्घाटन करती हैं। प्रो. आर. जी. हर्षे के शोधपरक लेख के अनुसार आलसिफ (साइप्रेस) से प्राप्त अपोलो (सूर्य) की ई. पूर्व 12 वीं शती की मूर्ति का अपरनाम 'रेशेफ' (Reshef) है।[8] यह 'रेशेफ' 'ऋषभ' का ही अपभ्रंश रूप है। ये ऋषभ संभवत: भारतीय नरेश नाभि पुत्र हैं, फोनेशिया में बैल चिह्न के कारण रोशेफ का अर्थ जीवों वाला देवता है, यह ऋषभदेव के बैल चिह्न की ओर इंगित करता है। फणिक लोग जैन धर्म के भक्त थे, यह जैन कथाग्रंथों से प्रमाणित है। यूनान में भी सूर्यदेव अपोलो की ऐसी नग्न मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिनका साम्य ऋषभदेव की मूर्तियों से है। डॉ. कालिदास नाग की 'डिस्कवरी ऑफ एशिया' नामक पुस्तक में मध्य एशिया में डेल्फी से प्राप्त एक आर्गिव मूर्ति का चित्र दिया है जो लगभग दस हजार वर्ष पुराना है और वह ऋषभदेव की दिगम्बर जैन मूर्ति से साम्य रखता है, जिसमें ऋषभदेव के कंधों पर लहराती जटाएँ भी हैं। यहाँ 'आर्गिव' शब्द का तात्पर्य अग्रमानव या आदिदेव के रूप में लगाया जा रहा है। समग्र विश्व में ऋषभदेव कृषि देवता, वर्षा के देवता और सूर्य देवता के रूप में प्रसिद्ध हैं। मध्य एशिया, मिस्र और यूनान में ज्ञान के कारण वे सूर्यदेव कहलाये। चीनी त्रिपिटक में उनका उल्लेख है। जापान में उन्हें रोकशब (Rok Shab) पुकारा गया।

भारतीय ही नहीं, अपितु विश्ववाङ्मय के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में अनेकों ऋचाओं में ऋषभदेव की स्तुति और जीवन परक उल्लेख मिलते हैं। यथा ऋषभदेव की स्तुति आत्मसाधकों में तथा मर्त्यों में सर्वप्रथम अमरत्व पाने वाले महापुरुष के रूप में की है।

हमुरावी (2123 - 2081 इ.पू.) के शिलालेखों के अनुसार स्वर्ग और पृथ्वी का देवता ऋषभ था। हित्तियों, मिस्रियों, अक्कड़ो, मितन्नियों, सुमेरो, यूनानियों आदि में उनकी आराधना विद्यमान थी।

अयोध्या प्रदेश के नाभिसुत ऋषभदेव ने पाषाणकालीन प्रकृत्याश्रित असभ्य युग का अंत करके ज्ञान - विज्ञान संयुक्त कर्म प्रधान मानवीय सभ्यता का भूतल पर सर्वप्रथम 'ॐ नम:' किया। जीवन के विविध क्षेत्रों में विकास के लिये अपने पुत्रों को पृथक - पृथक शास्त्र में निष्णात किया। ब्राह्मी और सुन्दरी नामक पुत्रियों को लिपि और अंक ज्ञान देकर नारी शिक्षा का सूत्रपात किया। शिक्षा का क्षेत्र हो या साहित्य का, कला हो या धर्म और दर्शन का, उनका ज्ञान अप्रतिम और प्रतिभा विलक्षण थी। इसीलिये उनका प्रभाव जनजीवन में, साहित्य में, वास्तु, मूर्ति, चित्र, शिल्प आदि कलाओं के रूप में विद्यमान है।

भारतीय ही नहीं, अपितु विश्ववाङ्मय के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में अनेकों ऋचाओं में ऋषभदेव की स्तुति और जीवन परक उल्लेख मिले हैं। यथा ऋषभदेव की स्तुति आत्मसाधकों में प्रथम, मर्त्यों में अमरत्व पाने वाले सर्वप्रथम महापुरुष के रूप में की है।[9] उनके उपदेश और विलक्षण वाणी को पूजनीय, शक्ति सम्पन्न तथा देव और मनुष्यों में पूर्वयावा (पूर्वगतज्ञान के प्रतिपादक) बताया।[10] कतिपय स्थलों पर उनकी आकृति की गरिमा मंडित की गई है। अन्यत्र नामोल्लेखपूर्वक आत्मा में परमात्मा के अधिष्ठानत्व की पुष्टि की है।[12] सब प्राणियों के प्रति मैत्री भावना के कारण वे देवत्व रूप में पूजनीय थे।[13]

यजुर्वेद में उन्हें सूर्य के समान तेजस्वी तथा मुक्ति मार्गदर्शी कहा है।[14] मनुस्मृति

में आदिनाथ के स्मरण को अड़सठ तीर्थों की यात्रा के समान फलदायी बताया है।[15] भागवतपुराण में उन्हें अष्टमावतार कहा है।[16]

अथर्ववेद में व्रात्यकाण्ड में ज्ञान - धान्य और साधना से समन्वित आध्यात्मिक व्रती का स्वरूप वर्णित है, जिसकी तुलना कैवल्य प्राप्ति हेतु ध्यानस्थ एवं ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् सभी जीवों को आध्यात्मिक और लौकिक जीवन के कल्याण का मार्ग बताने वाले ऋषभदेव से की जा सकती है व्रात्यों और मुनियों की चर्या में भी साम्य है। इसी तरह और भी अनेक सन्दर्भ हैं, जो ऋषभदेव के जीवन प्रसंगों से जुड़ते हैं।[17]

प्रकृतिवादी मरीचि ऋषभदेव के पारिवारिक थे। शंकराचार्य ने भी अर्हन्तों की विचारसरणि का उल्लेख किया है।[18] वेदों में अर्हतों वातरशना मुनियों, यतियों, व्रात्यों, विभिन्न तीर्थंकरों तथा केशी वृषभदेव संबंधी स्थल जैन धर्म की प्राचीनता को पुष्ट करते हैं।[19] अन्य वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रंथों, पुराणों, उपपुराणों और इतर वैदिक साहित्य में सहस्राधिक स्थल हैं जो ऋषभदेव की महिमा से मंडित हैं।

वस्तुतः जब वेदों की रचना हुई तब श्रमण मुनियों के अनेक संघ विद्यमान थे और ऋषभदेव उससे भी पूर्व परम्परा से ही वन्दनीय थे।

जैन कालगणना तीर्थंकर ऋषभदेव के अस्तित्व को संख्यातीत वर्षों में ले जाती है। डॉ. गोकुलप्रसाद जैन ने स्वयंभुवा मनु की पाँचवीं पीढ़ी के वंशज ऋषभदेव का समय 27000 वि.पू. संकेतित किया है।[20] साथ ही यह भी स्पष्ट किया कि ऋषभदेव और उनकी परम्परा में हुए अन्य तीर्थंकरों द्वारा प्रवर्तित महान संस्कृति और सभ्यता का प्रचार - प्रसार समग्र भारत में प्राग्वैदिक काल में ही हो गया था। तदन्तर वह विश्वव्यापी हुई और यूरोप, रूस, मध्य एशिया, लघु एशिया, मेसापोटिमिया मिस्र, अमेरिका, यूनान, बेबीलोनिया, सीरिया, सुमेरिया, चीन, मंगोलिया, उत्तरी और मध्य अफ्रिका, भूमध्यसागर क्षेत्र, रोम, ईराक, अरेबिया, इथोपिया, रोमानिया, स्वीडन, ब्रह्मदेश, थाईलेंड, जावा, सुमात्रा, श्रीलंका आदि समस्त देशों में फैल गई। 4000 ई.पू. से लेकर ईसा काल तक और तदुपरान्त भी यह जैन संस्कृति प्रचुरता में संसार भर में विद्यमान रही।[21]

भारत में आर्यों के आगमन के पूर्व यहाँ श्रमण संस्कृति व्याप्त थी। प्रागार्य तथा प्राग्वैदिक कालीन संस्कृति का सीधा संबंध द्रविड, व्रात्य,आर्हत् या श्रमण संस्कृति से है। नाग जाति पर भी श्रमण संस्कृति का प्रभाव परिलक्षित होता है।[22]

पुरातत्त्ववेत्ताओं ने ऋषभदेव का समय ताम्रयुग[23] के अन्त और कृषि युग के प्रारम्भ में लगभग 9000 ई.पू. माना है।[24]

पाश्चात्य विद्वान मेजर जनरल जे.सी.आर. फर्लांग की मान्यता है कि ईसा से अनगिनत वर्ष पूर्व भारत में जैन धर्म फैला हुआ था। आर्यों के आगमन के पूर्व यहाँ जैन धर्म के अनुयायी अवस्थित थे। वाचस्पति गैरोला, श्री विसेन्ट ए स्मिथ, ईस्ट इंडिया कम्पनी के पादरी रेवरेण्ड एब्बे जे. ए. डुबाई, डॉ. हर्मन जैकोबी, स्टीवेन्सन, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, डॉ. हीरालाल जैन, डॉ. लक्ष्मीनारायणसाहू, डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन तथा पं. राम मिश्र शास्त्री प्रभृति पाश्चात्य और भारतीय मनीषियों की उक्तियों का यही निष्कर्ष है कि जैन धर्म सृष्टि का आदि धर्म, सर्वप्राचीन धर्म तथा सच्चा धर्म है और इसके संस्थापक ऋषभदेव हैं। प्रो. मेक्समूलर ने जैन धर्म को किसी हिन्दू या अन्य धर्मों की शाखा नहीं अपितु स्वतंत्र धर्म माना है। डॉ. रामधारीसिंह दिनकर ने भी कहा है कि बुद्ध ने जो मार्ग अपने

लिये चुना वह बिलकुल नवीन मार्ग नहीं था, वह जैन साधना से ही निकला था और योग एवं तपस्या की परम्परा भी जैन साधना से ही निकली। इस प्रकार जैन साधना जहाँ एक ओर बौद्ध साधना का उद्गम है वहाँ शैव मार्ग का भी आदि स्रोत है। इस प्रकार जैन धर्म ही सृष्टि का आदि धर्म है। यह उससे भी प्राचीन है जितने कि ऋषभदेव।

ऋषभदेव ही इस युग में जैन धर्म के उद्गम स्रोत हैं, जहाँ से असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य, शिल्प और आध्यात्म की धाराएँ प्रस्फुटित हुई। निर्मल स्रोतस्विनी के रूप में ये धाराएँ देश में ही नहीं वरन् विश्व भर में विभिन्न संस्कृतियों के रूप में प्रवहमान हेकर जन-जन को सुव्यवस्थित और सुसंस्कृत जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त कर रही हैं।

सन्दर्भ स्थल —

1. Sindh : Five Thousand Years Ago, Ramprasad Chandra, Morden Review, Calcutta, 1932
2. सील क्रं. 620 / 1928 - 29
3. पउमचरियं, विमलसूरि, 4 / 68 - 69
4. आदिपुराण, आ. जिनसेन, 15 / 36, संगीत समयसार, आ. पार्श्वदेव, 7 / 96
5. आदिपुराण, 1 / 4, पुरुदेवचम्पूबन्ध, श्रीमदर्हददास, 5
6. भारतीय संस्कृति के सूत्रधार, शिवस्वरूप ऋषभदेव, राजेन्द्रकुमार बंसल, अर्हत् वचन, अप्रैल 96, पृ. 28
7. जैन धर्म की प्राचीनता (निबंध), मुनि श्री महेन्द्र कुमार 'प्रथम', ऋषभ सौरभ, 1992, पृ. 18, प्रकाशक - ऋषभदेव प्रतिष्ठान, दिल्ली
8. Bulletin of the Deccan College Research Institute, Part 14, Div. 3, pp. 229-236
9. तन्मर्त्यस्य देवत्वमजा नमग्रे, ऋग्वेद, 39 / 17
10. ऋग्वेद, 410 मंडल / 102 सूक्त / 6 मंत्र, 3 / 34 / 2
11. ऋग्वेद, 2 / 38 / 6, 1 / 190 / 1
12. ऋग्वेद, 4 / 58 / 3
13. ऋग्वेद, 10 / 166 / 1, तथा नास्य पशून् समानात् हिनस्ति - अथर्ववेद
14. यजुर्वेद अ. 31 / 8
15. अष्टषष्टिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत्। श्री आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद् भवेत्॥
16. श्रीमद्भागवत् स्कन्ध, 313, श्लोक 13
17. अथर्ववेद, 15 / 1 / 1 - 2, 15 / 1 / 15, 15 / 2 / 3 / 1 - 2, 15 / 1 / 3 / 4, 4 - 11, द्वारा ऋषभ सौरभ, पृं. 66
18. शांकर भाष्य, 2 / 2 / 33
19. ऋग्वेद, 10 / 102 / 6, 2 / 4 / 33 / 10, 2 / 4 / 1 / 33 / 4, 10 / 136 / 1 - 7

20 - 21. जैन संस्कृति का विश्वव्यापी प्रसार (निबंध), डॉ. गोकुलप्रसाद जैन, ऋषभ - सौरभ, 1992, पृ. 27 - 28

22. (1) नाग जाति पर नमण संस्कृति का प्रभाव (निबंध), डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया, ऋषभ सौरभ, 1992
    (2) नाग जाति और श्रमण संस्कृति, डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' ऋषभ सौरभ, 1992
23. हिन्दू सभ्यता, हिन्दी संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1958, पृ. 23
24. जैन संस्कृति का विश्वव्यापी प्रसार (निबंध), डॉ. गोकुलप्रसाद जैन, ऋषभ - सौरभ, पृ. 27

प्राप्त - 30.12.99

वर्ष - 12, अंक - 1, जनवरी 2000, 17 - 20

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन धर्म पर डाक टिकटें

■ सुधीर जैन *

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का मार्ग दर्शाने वाला जैन धर्म विश्व का एक प्राचीन धर्म है। इस धर्म का अपना इतिहास और संस्कृति है। जैन धर्म के अनुयायी इसे अनादि अनन्त धर्म मानते हैं। अनादि अनन्त का अर्थ है जिसका न तो कोई प्रारम्भ हो और न कोई अन्त हो। जैन धर्मावलम्बियों की ऐसी मान्यता है कि प्रत्येक काल में चौबीस तीर्थंकर होते हैं जो जैन धर्म का प्रचार - प्रसार करते हैं। वर्तमान काल में भगवान ऋषभदेव. पहले तथा भगवान महावीर चौबीसवें तीर्थंकर थे। इनमें से पहले ऋषभदेव ने कैलाश पर्वत (हिमालय की एक चोटी) से, बारहवें वासुपूज्य ने चम्पापुर (बिहार) से, बाईसवें नेमिनाथ ने गिरनार (गुजरात) से, भगवान महावीर ने पावापुरी से तथा शेष बीस तीर्थंकरों ने सम्मेदशिखर (बिहार) से मोक्ष प्राप्त किया।

भारतीय डाक विभाग द्वारा जैन धर्म से संबंधित अनेक डाक टिकट जारी किये गये हैं। जर्मनी द्वारा भी जैन धर्म संबंधी एक टिकट जारी किया जा चुका है। जैन धर्म से संबंधित डाक टिकटों का विस्तृत विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

सबसे पहले देखें विदेश में जारी जैन धर्म संबंधी डाक टिकट। पूर्व जर्मनी द्वारा 23.8.79 को भारतीय मिनियेचर पेंटिंग्स पर चार टिकटों का बहुत ही सुन्दर सेट जारी किया गया था। इनमें से एक टिकट (क्रमाँक एक) पर श्वेताम्बर आम्नाय की भगवान महावीर की रंगीन पेंटिंग अंकित है। पंद्रहवीं / सोलहवीं शताब्दी की यह आकर्षक पेंटिंग बर्लिन संग्रहालय में संग्रहीत है।

भारत में जारी जैन धर्म से संबंधित डाक टिकटों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पहली जैन मंदिरों पर डाक टिकटें, दूसरी जैन मूर्तियों पर डाक टिकटें और तीसरी जैन महापुरुषों पर डाक टिकटें। सबसे पहले दर्शन करें जैन मन्दिरों के। कलकत्ता में स्थित ऐतिहासिक बेलगछिया जैन मंदिर पहला जैन विषय था जिस पर 6 मई 1935 को सवा आना मूल्य की एक दोरंगी टिकट (क्रमाँक दो) जारी हुई थी। इस टिकट पर किंग जार्ज पंचम के साथ बेलगछिया के भगवान शीतलनाथ का चित्र छपा था।

स्वतंत्रता के पश्चात् 15 अगस्त 1949 को भारत सरकार ने पुरातत्व विषय पर प्रथम नियत डाक टिकट माला जारी की थी। सोलह टिकटों की इस श्रृंखला में दो टिकटें जैन धर्म से संबंधित थीं। पंद्रह रूपये मूल्य की टिकट (क्रमाँक तीन) पर गुजरात के सुप्रसिद्ध तीर्थ पालीताना में स्थित शत्रुंजय जैन मंदिर का चित्र अंकित है। इसी श्रृंखला की एक रूपये मूल्य की डाक टिकट (क्रमाँक चार) पर चित्तौड़गढ़ स्थित विजयस्तंभ अंकित है।

जैन धर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का 2500 वाँ निर्वाण महोत्सव सन् 1974 - 75 में बहुत धूम - धाम से मनाया गया था। इस उपलक्ष्य में भारत सरकार द्वारा दीपावली के दिन 17 नवम्बर 1974 को एक डाक टिकट (क्रमाँक पाँच) जारी किया गया था। इस टिकट पर भगवान महावीर के निर्वाण स्थल पावापुर (बिहार) में स्थित जल

* सुषमा प्रेस, सतना - 485 001 (म.प्र.) फोन : 07672 - 23565

मंदिर का चित्र अंकित है। उल्लेखनीय है कि भगवान महावीर का निर्वाण दीपावली के दिन ही हुआ था।

अब देखें जैन मूर्तियों पर जारी डाक टिकटें। कर्नाटक प्रदेश के हासन जिले में श्रवणबेलगोला नगरी में विंध्यगिरि पर्वत पर गोमटेश्वर के नाम से विख्यात 57 फुट ऊँची भगवान बाहुबली की अत्याकर्षक विशाल मूर्ति स्थित है। प्रत्येक बारह वर्ष में इस मूर्ति का महामस्तकाभिषेक होता है। सन् 1981 में इस मूर्ति के निर्माण के एक हजार वर्ष पूर्ण होने पर आयोजित महामस्तकाभिषेक में कई लाख लोग एकत्रित हुये थे। इस अवसर पर 9 फरवरी 1981 को एक सुन्दर बहुरंगी डाक टिकट (क्रमाँक छः) जारी की गई थी जिस पर गोम्मटेश्वर बाहुबली का चित्र अंकित है।

1 जुलाई 1966 को भारत सरकार ने तृतीय नियत डाक टिकट माला जारी की थी। इस श्रृंखला की एक रूपये मूल्य की टिकट (क्रमाँक सात) पर पत्र लिखती सुन्दरी की जिस मूर्ति का चित्र अंकित था वह मूर्ति खजुराहो (म.प्र.) के पार्श्वनाथ जैन मन्दिर में स्थित है। इसी प्रकार 27 जुलाई 1978 को कच्छ संग्रहालय पर बहुत ही आकर्षक डाक टिकट (क्रमाँक आठ) जारी की गई थी। उस पर जो ऐरावत हाथी अंकित था वह कलाकृति गुजरात के एक प्राचीन जैन मंदिर से कच्छ संग्रहालय में लाई गई थी।

महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ तृतीय द्वारा स्थापित बड़ौदा संग्रहालय की शताब्दी के अवसर पर 20 दिसम्बर 1994 को भारतीय डाक विभाग द्वारा ग्यारह रूपये और छः रूपये मूल्य की जुडवाँ टिकटें (सी - टेनेन्ट) जारी की गई थी। इन जुडवाँ टिकटों (क्रमाँक बारह) पर बड़ौदा संग्रहालय में संग्रहीत भगवान ऋषभदेव की श्वेताम्बर आम्नाय की काँस्य की खड्गासन मूर्ति अंकित है। छठवीं शताब्दी की मूर्ति के दोनों ओर यक्ष - यक्षिणी की पद्मासन मूर्तियाँ भी बनी हुई है।

विश्व प्रसिद्ध खजुराहो मंदिरों की स्थापना का सहस्राब्दि वर्ष मार्च 1999 से मार्च 2000 तक मनाया जा रहा है। सहस्त्राब्दि वर्ष का उद्घाटन 6 मार्च 1999 को राष्ट्रपति महामहिम के. आर. नारायणन ने किया था। इसी दिन भारतीय डाक विभाग ने पंद्रह रूपये मूल्य की एक आकर्षक डाक टिकट (क्रमाँक पंद्रह) जारी की थी। इस टिकट पर पार्श्वनाथ जैन मंदिर में स्थित पैर से काँटा निकालती हुई सुन्दरी का सुन्दर चित्र अंकित है।

जैन धर्मावलंबियों ने विज्ञान, शिक्षा, उद्योग, समाजसेवा आदि सभी क्षेत्रों में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। हर क्षेत्र में अनेक जैन महापुरुषों का योगदान रहा है। इनमें से कुछ की स्मृति में भारत में डाक टिकट जारी किये गये हैं। अब हम चलते हैं जैन महापुरुषों पर जारी इन डाक टिकटों की ओर।

जैन मुनि मिश्रीलाल जी ने श्वेताम्बर (स्थानकवासी) भिक्षु परम्परा में श्रमण दीक्षा ग्रहण की थी। वे संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, राजस्थानी भाषा के प्रकाण्ड विद्वान थे और उन्होंने 180 से अधिक दार्शनिक - सामाजिक रचनायें की। उनकी स्मृति में 24 अगस्त 1991 को जारी डाक टिकट (क्रमाँक नौ) पर मुनिजी के साथ ही जैतारण (राजस्थान) में निर्मित उनकी समाधि मरूधर केसरी पावन धाम का चित्र भी अंकित है।

सुप्रसिद्ध अंतरिक्ष वैज्ञानिक श्री विक्रम अम्बालाल साराभाई तथा प्रख्यात शिक्षा शास्त्री

डा. भाऊराव पाटिल भी जैन थे। ''मानवता के लाभार्थ अंतरिक्ष अनुसंधान'' श्री विक्रम साराभाई का लक्ष्य था। उनकी स्मृति में 30 दिसम्बर 1972 को जारी डाक टिकट (क्रमाँक दस) पर उनके चित्र के साथ एक राकेट तथा शान्ति का प्रतीक कबूतर अंकित है। सामाजिक कार्यकर्ता और जनसेवी पद्मभूषण डा. कर्मवीर भाऊराव पाटिल ने अपना सारा जीवन ग्रामीण जनता को शिक्षित करने तथा दलितों और शोषितों के उत्थान में लगा दिया। उन पर 9 मई 1988 को जारी टिकट (क्रमाँक ग्यारह) पर उनके चित्र के साथ ही एक साक्षरता कक्षा अंकित है।

जैन दर्शन और प्राकृत भाषा के विश्व विख्यात विशेषज्ञ डा. जगदीशचंद्र जैन ने 80 से अधिक पुस्तकें तथा अनेक शोध पत्र लिखे। महात्मा गांधी की हत्या के संबंध में सन् 1949 में लाल किला दिल्ली में चले मुकदमे में वे मुख्य गवाह थे। उनकी स्मृति में भारतीय डाक विभाग द्वारा 28 जनवरी 1998 को दो रुपये मूल्य का एक डाक टिकट (क्रमाँक तेरह) जारी किया गया जिस पर डा. जगदीशचंद्र जैन के चित्र के साथ दो प्राचीन सील भी मुद्रित है जिनमें से एक पर तीन जैन तीर्थंकरों की खड्गासन प्रतिमायें प्रदर्शित है।

तेरहपंथ श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैन संत आचार्य तुलसी ने जीवन में मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिये **''संयम ही जीवन है''** घोष वाक्य के साथ अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया था। उन्होंने सभी 32 जैन आगमों का समीक्षात्मक संस्करण प्रकाशित कराया तथा जैन विश्व भारती की स्थापना की जिसे भारत सरकार ने मान्य विश्वविद्यालय का दर्जा दिया। उनकी 84 वीं जन्म जयंती पर 20 अक्टूबर 1998 को तीन रुपये का एक डाक टिकट (क्रमांक चौदह) जारी किया गया। इस पर आचार्य तुलसी तथा अणुव्रत आन्दोलन का प्रतीक चिह्न अंकित है।

भारतीय डाक विभाग द्वारा देश के अनेक दर्शनीय स्थलों के डाकघरों में उस स्थान से संबंधित चित्र युक्त विशेष मोहर नियमित रूप से लगाई जाती है। इनमें भी कुछ स्थल जैन धर्म से संबंधित है। ऐसी सर्वाधिक मोहरें कर्नाटक प्रदेश में लगाई जा रही हैं। ये हैं श्रवणबेलगोला (बाहुबली), बदामी (जैन गुफा), पट्टकदल (जैन मंदिर), कारकल (बाहुबली), धर्मस्थल (बाहुबली)। मध्यप्रदेश में विश्व प्रसिद्ध खजुराहो में जैन और शैव दोनों मतों के कलात्मक मंदिर स्थित है। इसी प्रकार महाराष्ट्र के एलोरा में भी वैष्णव एवं जैन गुफायें हैं। गुजरात में स्थित पालीताना तथा राजस्थान में स्थित देलवाड़ा जैन मंदिरों के लिये विख्यात हैं। यहाँ भी नियमित विशेष मोहरें लगाई जाती हैं।

जैन धर्म से संबंधित अनेक कार्यक्रमों, पंचकल्याणकों, सम्मेलनों, प्रदर्शनियों, जयन्तियों आदि पर भी आयोजकों द्वारा विशेष कव्हर जारी किये गये हैं और भारतीय डाक विभाग द्वारा जैन धर्म संबंधी चित्रों व नारों वाली विशेष केन्सिलेशन मोहरें लगाई गई हैं। शाकाहार और जीव दया से संबंधित कुछ नारों वाली विशेष मोहरें भी भारतीय डाक विभाग द्वारा विभिन्न आयोजनों के अवसर पर लगाई गई हैं। इन्हें भी ''जैन धर्म और फिलाटेली'' विषय में शामिल किया जा सकता है। ऐसे कव्हर और केन्सिलेशन्स की संक्षिप्त सूची यहाँ (अगले पृष्ठ पर) प्रस्तुत है।

जैन धर्म संबंधी विशेष आवरण एवं मोहरें

दिनांक	स्थान	अवसर, आवरण एवं मोहरें
10. 4.73	जयपुर	राजपेक्स - 73, विजय स्तम्भ
15. 8.73	हासन	जालपेक्स - 73, बाहुबली
14. 6.75	बैंगलोर	करनपेक्स - 75, गोम्मटेश्वर
10.10.76	लुधियाना	लुपेक्स - 76, भगवान महावीर टावर
12.11.76	अकोला	अकोपेक्स - 76, प्राचीन जैन मन्दिर, सिरपुर
8.12.78	सम्गरूल	सनपेक्स - 78, जैन धर्मशाला
9. 2.79	जमशेदपुर	दीपेक्स - 79, पावापुरी जल मन्दिर
17. 2.79	कोचीन	कोचीनपेक्स - 79, चन्द्रप्रभु मन्दिर
9. 2.81	श्रवणबेलगोला	मुर्ति निर्माण की 1000 वीं वर्षगांठ
3. 2.82	कलकत्ता	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
3. 2.82	धर्मस्थल	बाहुबली प्रतिष्ठापन महोत्सव
7. 2.82	पटना	बिपेक्स - 82, पारसनाथ पर्वत
25. 9.82	जयपुर	जयपेक्स - 82, रानकपुर जैन मन्दिर
26. 9.82	जयपुर	जयपेक्स - 82, दिलवारा जैन मन्दिर
5. 8.84	बम्बई	अनन्तनाथ जैन मन्दिर
28. 1.85	देवघर	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
8. 2.85	दिल्ली	तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय जैन सम्मेलन
12. 4.86	राजगिर	महावीर प्रथम देशना स्मारक
6.11.86	राजगिर	गौतम गणधर 2500 वाँ निर्वाण महोत्सव
28. 1.88	औरंगाबाद	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
28. 3.88	कलकत्ता	एस. एस. जैन सभा हीरक जयन्ती
22.10.88	रीवा	जैन अधिवेशन, शाकाहारी सदा सुखी
11.12.88	आरा	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
14. 2.89 से 18. 2.89	कलकत्ता	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव (पाँचों पृथक)
12. 2.92 से 16. 2.92	कलकत्ता	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव (पाँचों पृथक)
17.12.94	कलकत्ता	जैन विद्यालय हीरक जयन्ती
3.10.98	राजगिर	वीरायतन हीरक जयन्ती
4.10.98	राजगिर	अमर मुनि महाराज जयन्ती
5.10.98	कलकत्ता	वीरायतन रजत जयन्ती
25.12.98 से 3. 1.99	चेन्नई	जैन मेला
29. 9.99	ईसरी	गणेश वर्णीजी की 125 वीं जयन्ती

प्राप्त - 5.9.99

वर्ष - 12, अंक - 1, जनवरी 2000, 21 - 28

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

ऋग्वेद मूलत: श्रमण ऋषभदेव प्रभावित कृति है!

■ स्नेहरानी जैन *

विश्व के विद्वानों, इतिहासकारों एवं पुरातात्विकों के मतानुसार इस धरती पर ईसा से लगभग 5000 - 3000 वर्ष पूर्व के काल में सभ्यता अत्यन्त उन्नति पर थी। मिस्र देश के पिरामिड और ममी, स्फिंक्स, चीन की ममी, ग्रीक के अवशेष, बेबीलोन, भारत के वेद, मोहनजोदड़ो - हडप्पा के अवशेष, तक्षशिला, नालन्दा आदि कुछ ऐसे ही प्रतीक हैं जो अपनी कला, संस्कृति, सभ्यता और सामाजिक चेतना के चरम बिन्दु से लगते हैं।

भूविशेषज्ञों के मतानुसार अनेकों बार लंबे काल में हमारी धरती पर प्रमुख बदलाव ऐसे आये हैं जिन्होंने धरती का भूगोल ही बदल दिया। जो धरती लाखों वर्ष पूर्व इकट्ठी थल रूप थी तथा जल से घिरी थी, पंजिया[1] कहलाती थी। वही धरती लाखों वर्षों के अन्तराल में धीरे - धीरे अब 6 महाद्वीपों और अनेकानेक द्वीपों में बदल चुकी है। जैन आगमों में वर्णित थालीनुमा धरती से यह जानकारी बहुत मेल खाती है।[2, 3] उसी के अनुसार भोगभूमि काल में हरे - भरे जंगल , फल - फूल, वनस्पति और पवन, जल, जीव आदि इतने अनुकूल थे कि सभी प्राणियों का जीवन सर्व सुरक्षित और सुखमय था।[4] उस थालीनुमा भू - भाग पर बड़े - बड़े हाथी, डायनासोर घूमते - विचरते अन्य पशुओं / प्राणियों के साथ जीवन यापन करते थे। मनुष्य निर्दोष, निर्विकल्प, संतुष्ट और सुखी सा विचरण करता था। प्रकृति उन्हें भरपूर देती थी। वह जैन आगमों के अनुसार कल्पवृक्षों वाला (भोगभूमि) युग था।

फिर भूगर्भीय परिवर्तनों ने भूकम्प, ज्वालामुखी और नैसर्गिक प्रकोपों के संकेत देने प्रारम्भ कर दिये। इसे प्रलय पुकारा गया। बड़े - बड़े डायनासोर और हाथी जीवित ही धरती में दफन हो गये जिनके कंकाल आज भी जहाँ - तहाँ मिलते हैं। मनुष्य को जलवायु और वनस्पतियाँ समस्यात्मक लगने लगीं। मनुष्य ने अपने नेता से जीवन की समुचित राह चाही। जैन मान्यतानुसार[5] वह नेतृत्व ऋषभदेव का ही था जिन्होंने असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प को जन्म दिया। यह सब इतना प्राचीन है कि उसके प्रमाण आज मात्र पौराणिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आधार पर ही दिये जा सकते हैं तथा जिन्हें किसी भी प्रकार से खंडित भी नहीं किया जा सकता है।

मंडला - भंडारा की गुफाओं तथा भोपाल की भीमबेठिका गुफाओं में 8 से 10 हजार वर्ष पूर्व की आदिम मानव सभ्यता के रेखा चित्र यही दर्शाते हैं कि तब भी मनुष्य अपनी प्रवृत्तियों में वैसा ही लीन था जैसा कि आज की आदिम जातियाँ हैं। सम्पन्न समाज परिष्कृत था जिसकी अपनी बोली थी, लिपि थी। ऋषियों, तपस्वियों के पास ज्ञान था और जीवन के तरीके थे। विश्व के रहस्यों को जानने की तीव्र उत्कंठा थी। उसके बाद मानव ने किस प्रकार भाषा और लिपि को बदला, भाषाविदों के लिये यह जानने की बात अवश्य है। स्वर को संकेत देकर लिपि ने विश्व के भिन्न - भिन्न कोनों में भिन्न - भिन्न रूप पाये। समय के साथ वे रूप भी बदलते गये और भाषायें और लिपियाँ भी बदलती गईं। विश्व के प्राचीनतम साहित्य के रूप में 'पेपीरस' और 'ऋग्वेद' को ही जाना एवं माना जाता है। भारतीय विद्वानों के मतानुसार ऋग्वेद का जन्म लगभग 10,000 ईसा पूर्व वर्ष में हुआ जिसमें श्रुतज्ञान की अवस्थिति मौखिक ही प्रमुख थी। अर्थात् उसके पृष्ठों में तत्कालीन भाषा का दिग्दर्शन हमें आज भी मिलता है। उस समय 18 महाभाषाएँ और 700 लघु भाषाएँ प्रचलित थीं। वह ग्रंथ सामान्य और जन - जन में बोली जाने वाली तब

* पूर्व प्रवाचक - भेषज विज्ञान, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि., सागर। निवास - 'छवि', नेहा नगर, मकरोनिया, सागर - 470 002 (म.प्र.)

प्रचलित शौरसेनी (मूल) प्राकृत का प्रतीत होता है भले ही उसे संहिताओं द्वारा बाद में लिपिबद्ध किया गया। उसमें दो विशेषताएँ देखने में अवश्य आती हैं। पहली सिर को पार करती हुई खड़ी मांत्राएँ और दूसरी हैं नीचे की आड़ी रेखाएँ। इसके अलावा शौरसेनी का भरपूर शाब्दिक उपयोग भी देखा जा सकता है। यह भाषा आज भी सहज ही दक्षिण भारत में समझी जा सकती है। भारतीय संगीत जगत की भी यही भाषा है।

ऋग्वेद की भाषा संस्कृत मिश्रित प्राकृत है। प्रसिद्ध लेखिका अमृता प्रीतम के मतानुसार ऋग्वेद की रचना एक ही बार में ना होकर धीरे-धीरे लम्बे अन्तराल में अनेकों (27) संहिताओं के संकलन के रूप में हुई है। अंतराल होने पर भी भाषा की शैली में अधिक अंतर ना आ पाने से वह समान रूप से समझी जाती रही है। विश्व के सामने इससे पुरातन लिखित शास्त्र अन्य कहीं उपलब्ध नहीं है। यह ग्रंथ इस हेतु बहुत सी बातों की ओर सूक्ष्मता से संकेत देता है। उचित होगा कि सर्वप्रथम हम यही देखें कि यह धर्म ग्रन्थ अपने अन्दर क्या संजोये है? हमारे देखने में ऋग्वेद की दो कृतियाँ आई हैं - (1) दयानंद सरस्वती संस्थान, दिल्ली द्वारा प्रकाशित तथा (2) पं. रामगोविन्द त्रिवेदी द्वारा सम्पादित विद्या भवन, चौखम्बा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित। इनमें हमनें पहली को ही अपना आधार बनाया है।

इसके 10 मंडलों में सूक्ति और ऋचाएँ हैं जिनमें प्रकृति के मूल अवयवों अग्नि, पवन, जल, सूर्य, इन्द्र, अन्न, वनस्पति तथा पृथ्वी को देवस्वरूप मानते हुए उनकी पूजा अर्चना की है। वनस्पति की औषधमय महत्ता पहचानते हुए इन नैसर्गिक प्रतीकों को 'देव' मानकर उन्हें प्रसन्न रखने का उपक्रम यज्ञों द्वारा आदेशित किया दिखता है। ईश्वर की कल्पना इन्हीं अवयवों के आधार पर की गई है जिसमें कृषि हेतु वृषभ और गौ की सर्वाधिक प्रधानता दर्शयी गई है।

इनकी उपयोगिता दर्शाने वाला जिसे 'मनु'[6] कहा गया है वह आखिर कौन है? उसका मनुस्मृति वाले मनु से क्या सम्बन्ध है जिसने स्त्रियों तथा शूद्रों के संबंध में अपने आदेश निषेधात्मक दिये हैं? शोध का यह गंभीर विषय बनता है। क्योंकि यह ऋग्वेद में स्पष्ट नहीं किया गया है। जैनागम वर्णित 14 मनुओं में नाभिराय को अंतिम मनु अथवा कुलकर माना गया है जिनके बेटे ऋषभकुमार थे। ज्ञान दाता वह राजा, वह नेता, वह मार्गदर्शक कौन है, यह भी ऋग्वेद में स्पष्ट अंकित नहीं किया गया है। पुन: क्योंकि जैनागम इस हुंडावसर्पिणी के कर्म युग के दिग्दर्शक आदिनाथ को ही सर्वश्रेय देते हैं जिन्होंने समाज को षट्विद्याएँ और 72 कलाएँ दी।[7] कृषि, असि, मसि, विद्या, शिल्प, वाणिज्य तो दीं ही, अपनी बेटियों को गणित (अंक विद्या), लिपियाँ तथा बेटों को ज्योतिष, न्याय, शास्त्र आदि की शिक्षा भी दी है। यह स्वाभाविक हो जाता है कि वही 'मनु' ऋषभ के पिता के रूप में कदाचित यहाँ भी प्रतिष्ठित हुए हैं और उन्हें नाभि[8] नाम से स्वीकारा भी गया है। उनके पिता अजनाभ के ही नाम से भारत को अजनाभ वर्ष पुकारा जाता था जिसकी सीमायें तब बहुत व्यापक थीं। उस प्रारम्भिक दण्ड व्यवस्था में जिसमें हा....! मा....! धिक....![9] की व्यवस्था थी, उन्होंने सम्मति दी थी, उसे ऋग्वेद में भी प्रस्तुत किया गया है।[10] सांकेतिक प्रस्तुति भी अपने आप में पाठक को सत्य दर्शन की झलक से अवगत करा देती है -

अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा चं रीरिपत्।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोर्चनात्॥20॥22॥

ऋग्वेद ग्रन्थ में 'पदार्थ' स्तुति के रूप में 'रूपांतरण' तथा वहीं पर भावार्थ के

रूप में श्लोक को जिस भूमिका तथा आशय से प्रस्तुत किया गया है वह बेहद अधकचरा, कमजोर और एकांगी है तथा वेद जैसे प्रसिद्ध, ख्यातिप्राप्त, पावन ग्रन्थ की पृष्ठभूमि को समझे बगैर उसके अस्तित्व को ही तुच्छ करा देता है। इसका भान पाठक ऋग्वेद की सूक्तियों को उनके प्रस्तुत पदार्थ तथा भावार्थ को पढ़कर स्वयं आंक सकते हैं।

वास्तव में ऋग्वेद उन ज्ञानियों, ऋषियों, तपस्वियों, मनीषियों की स्तुति रूप प्रस्तुति है जिन्होंने उस युग की मानव समाज को कल्पवृक्ष विलीन होने पर जीने के तरीके सिखलाये यथा विद्युत, अग्नि कैसे उत्पन्न की जाये, उसके उपयोग[11] और तेज की तुलना 'सेना' और 'राजा' से करते हुए राजा क्या करे या न करे[12], मनुष्य के कर्तव्य और निषेध दर्शाये हैं।[13] यहाँ तक कि विद्वान क्या करें और विदुषियाँ क्या करें यह भी दर्शाया है।[14] यही स्पष्ट करा देता है कि अमृता प्रीतम के कथन में सत्यता है कि ऋग्वेद की रचना काल में विदुषियाँ थी और उनका सहयोग ऋचाओं की रचनाओं में अत्यन्त स्वाभाविक और सहज रहा। जैन धर्म की मान्यतानुसार ऋषभदेव की दोनों पुत्रियाँ ब्राह्मी तथा सुन्दरी उस काल की परम विदुषियाँ थीं। अत: ऋग्वेद का कहना कि 'उत्तम विद्या और गुणों से युक्त महिलाओं का ही आश्रय लो', मात्र श्रमण परम्परा में स्वीकृत तथा मान्य होने के कारण उत्तरकालीन आर्य परम्परा में भी मान्य रहा प्रतीत होता है।

मानव समाज को लौकिकता का मार्ग दिखलाने वाला यह ग्रंथ आध्यात्मिकता के धरातल पर उठने की भावना रखते हुए जिन गुणी जनों की अर्चा (वन्दना) करता है वे हैं **अर्हन्**[15], **जिन**[16], **केवलि**[17], **केशी**[18], **मुनि** और **वातरशना**[19] जो जैन श्रमण धर्म में पूज्य **अर्हन्त** और **(आप्त)**[20] **सिद्ध** को ही इंगित करते हैं।

'मुझे भी हे प्रभु, अपने जैसा योग्य बनने का मार्ग दिखा'। पदार्थ की आड़ में आज वेदार्थियों ने सूर्य का अर्थ मात्र चमकने वाला सूर्य को ही मान लिया है। यह उनकी बुद्धि की स्थूलता है। क्योंकि सूर्य आत्मा के तेज को, ज्ञान के प्रकाश को भी कहा जाता है। वही देवों का देव है। उपरोक्त सभी संकेत ऋग्वेद की 'संकलन कालीन' ऋचाओं को उनकी संहिताओं में उल्लिखित नामों के आधार पर पूर्व से चली आ रही श्रमण परम्परा की झांकी दिये बिना नहीं रहते। ऐसा संभव है कि यज्ञ सम्बन्धी ऋचाओं को उत्तरकालीन संहिताओं के माध्यम से ऋग्वेद में बहुत बाद में प्रवेश दिलाया गया हो, किन्तु मूल में तो यह ग्रंथ श्रमण जैन परम्परा से ही प्रभावित दिखता है।

मनुष्यों के बीच नरश्रेष्ठ (अतिउत्तम) **'वृषभ'**[21]कहा जाने वाला मात्र बैल अथवा सांड तो हो नहीं सकता , हाँ ये संभव माना जा सकता है कि जिसका चिन्ह वृषभ हो ऐसा **'ऋषभ'**[22] इनका भी परम इष्ट रहा है। परमेश्वर के अनन्तत्व और अमरत्व के बारे में कहते हुए अनेक ऋचाएँ [23] बतलाती हैं कि यह जो आप स्वयं को जीतकर आयु रहित कर चुके हैं अर्थात् हे जिन अथवा जिनेन्द्र भगवान जिन्होंने कर्मों को जीत कर अमरत्व पाया है हमें भी सुरक्षित कीजिये। पुन: आगे भी लिखा गया है कि **'परमेश्वर (आत्मा) अनंत बलों का स्वामी है। मनुष्यों को उन्हें जानना चाहिये। आध्यात्म यज्ञ तप करने वाले उपासकों को उनका ज्ञान है और वे पाप तथा कर्मों को अपने पुरुषार्थ से क्षय कर देते हैं।'** यहाँ पूरा पूरा कर्म क्षय संबंधी जैन सिद्धान्त ही प्रस्तुत हुआ है जो सिद्धत्व के अनंतत्व और अमरत्व की ओर संकेत करता है। आगे यह भी कहा गया है कि जिनके असाधारणपने को कैवल्य पुकारा जाये वह हे परमात्मा[24] ....। गणधरों जैसे ज्ञानियों ने जिस कल्पना को परमात्मा कहकर पुकारा है वह **नरश्रेष्ठ** व जितेन्द्रिय है[25, 26] अपने पुरुषार्थ से प्रजा का मार्गदर्शक, मानवों में सूर्य सा प्रखर तेजस्वी, परमतपी, परम इष्ट

ऋषभ है, वृषभ है, केशी है, वातरशना है, अर्हन है, सूर्य के समान सब लोकों को प्रकाशित कर रहा है, सर्वत्र व्याप्त है[27] **सर्वज्ञ** [28] है अर्थात् परम शुद्ध (ज्ञान) स्वरूपी आत्मा है जिसमें लोक का प्रत्येक ज्ञेय झलक रहा है। वही वृषभ आनंद वर्धक गुणों से आनंद गमन करता है। वही मुनि (मौनि)[29] विज्ञान युक्त आत्मा एवं मन: सत्य वाला देवों का देव है। वह केशी तेज युक्त है, ज्योति युक्त आत्मा है, नग्न है। वही ऋषभ, परमात्मा, कर्म शत्रुओं को नाश करने वाला है। उसी परमात्मा (ऋषभदेव) की उच्चरित दिव्यध्वनि को सरस्वती कहकर पूज्या माना गया है जो ऋग्वेद में भी मान्य है।[30,31,32] जबकि विष्णु के साथ 'लक्ष्मी' को याद भी नहीं किया[33] गया। विशेषकर वाणी और बुद्धिवर्धक ज्ञान को ही धन माना है।[34] प्रबुद्ध पाठक इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकते कि भला विष्णु के साथ सरस्वती का संयोग कैसे था?

एक ओर तो ऋषभ, वृषभ और उनकी कृषि प्रधान व्यवस्था को ऋग्वेद में दर्शाया गया है **आखेट को नहीं।** दूसरी ओर अर्हन, केशी, जिन और कैवल्य जैसी आध्यात्म और तप की चरम स्थितियों को भी याद किया गया है जो श्रमण धर्म का चरम लक्ष्य रही है। जिसके अन्तर्गत वर्ण भेद रहित मनुष्यता ही मान्य है।[35] जो सह अस्तित्वता सभी जीवों के साथ स्वीकारती है।[36] तिस पर आश्चर्य की बात ये है कि हा, मा, दण्ड व्यवस्था को स्वीकार करने वाली ऋषभ कालीन दण्ड व्यवस्था को भी याद किया है किन्तु वर्तमान में प्रचलित जैनेतर मान्यताओं के शंकर, गणेश, कृष्ण, हनुमान, राम आदि संज्ञाओं का उल्लेख तक नहीं किया। **अरिष्टनेमि**[37] को बार-बार **'धुरी'** मानकर याद करने वाली ऋचाओं के आस-पास भी कृष्ण को स्मरण नहीं किया गया जबकि वे अरिष्टनेमि (नेमिनाथ), 22 वें तीर्थंकर के चचेरे भाई थे। यह सब देखते हुए ऐसा ही प्रतीत होता है कि ऋग्वेद मूलत: एक अहिंसक जैन ग्रन्थ रहा है[38], जिसे बाद में जोड़ी गयी संहिताओं के आधार पर यज्ञों और हिंसा की ओर मोड़ दिया गया। महावीर को इसी हेतु पथ भ्रष्ट समाज को पुनर्जाग्रत करना पड़ा। अहिंसा की परम्परा महावीर काल में पुन: स्थापित होते हुए भी गौतम बुद्ध के मध्यमार्गी प्रवाह की ओर सहज मुड़ गयी। उसे भी श्रमण नाम दे दिया गया। किन्तु पूर्व से चली आ रही श्रमण जैन परंपरा मात्र ऋषभ प्रदर्शित एवं प्रस्थापित दीर्घ परंपरा सिद्ध होती है। अर्हन्तों की परंपरा उस गौतम बुद्ध समर्थक काल से भी अत्यन्त प्राचीन काल में जैन श्रमणों द्वारा स्वीकारी गयी थी जिसके साक्ष्य मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त पाँच हजार वर्ष पूर्व कालीन कायोत्सर्गी नग्न धड़, सीलें, वृषभ के टेराकोटा अवशेष आदि हैं जिनमें ऋषभदेव को ही धर्म प्रवर्तक माना गया था। घोर तप से बढ़ी हुइ लटों के कारण जिन्हें केशी कहा गया था और दिगम्बरत्व के कारण वातरशना पुकारा गया था। आज भी मथुरा अवशेषों के रूप सारनाथ संग्रहालय में देखे जा सकते हैं। अरिष्टनेमि उन्हीं अर्हन्तों की कड़ी में 22 वें तीर्थंकर हैं जिनके नाम से उल्लिखित एक पद्मासन मुद्रा (मूर्ति) लखनऊ संग्रहालय में अवस्थित है जो अरिष्टनेमि नाम की ऐतिहासिक महत्ता को स्थापित करती है। ऋग्वेद उन्हीं 22 वें तीर्थंकर के बाद की संकलित कृति प्रतीत होती है जो उन्हें याद भी करती है और शौरसेनी प्राकृत में भी लिखित है। शौरसेनी प्राकृत संस्कृत का वह रूप मानी जाती है जो सूरसेन जनपद की भाषा (मथुरा नेमिनाथ के पिता की राज्य की ही भाषा) ही थी। भाषाविदों में विशेषत: यूरोपियन विद्वानों (जर्मन) ने तो इसमें दिगम्बरी भाषा का संकेत दिया है[39] तथा इसका उल्लेख डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ द्वारा लिखित प्राकृत विमर्श[40] में स्पष्ट देखा जा सकता है। वररूचि की भाषा भी यही शौरसेनी है जो ऋग्वेद में प्रयुक्त है तथा आज भी दक्षिण भारत की भाषाओं में जिसकी झलक मौजूद है। अत्यन्त अल्प शब्दों में अति व्यापक अर्थ की प्रस्तुति

इसकी प्रथम विशेषता है।

निष्कर्ष

एक नहीं अनेकों साक्ष्यों के साम्य को देखते हुए मैंने तो यही निष्कर्ष निकाला है कि श्रमण जैन मान्यता के अनुसार ऋषभदेव द्वारा प्रदर्शित **कृषि, असि, मसि, वाणिज्य, कला, शिल्प** की षट् विद्याओं के प्रति अपने आधार स्वरूप मानव ने उन्हें उनके शासन काल में ही अत्यंत प्रधानता देते हुए कृषि, गौ और वृषभ की मूर्तियाँ बनाकर सर्व कामना पूर्णकर्ता मान पूजना प्रारम्भ कर दिया रहा।[41] उसी परम्परा के चलते हुए **हा, मा. धिक** वाली दंड व्यवस्था तथा ब्राह्मी, सुन्दरी संस्कृति में विदुषियों को सम्मान तथा विशेष स्थान का भी ध्यान रखा गया जो मनुस्मृति की मान्यताओं से सर्वथा विपरीत है। जैन मान्यतानुसार जिन चार गतियों में भ्रमण करते मानव, देव, तिर्यन्च और नारकी दर्शाये गये हैं[42] उनमें से एक अर्थात् देवों में इन्द्र को भी पूज्य मान लिया गया जो जैन मान्यतानुसार तीर्थंकर की सेवा में हरदम तत्पर रहता है। उसी ऋषभ (वृषभ) को परमात्मा, अर्हन, केवली, देवों का देव[43] भी वेद रचयिता जानते रहे, मानते रहे। आत्मा को परमात्मा जानकर [44] उसकी मुक्ति का लक्ष्य भी इष्ट रहा।[45] आप्त, जो शुद्ध ज्ञान स्वरूपी कैवल्य का द्योतक है, ही श्रेष्ठ रहा। यही स्पष्ट करा देता है कि उस काल में मान्य अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी आदि में अग्निकाय तथा अग्निकायिक, वायुकाय तथा वायुकायिक, जलकाय तथा जलकायिक और पृथ्वीकाय एवं पृथ्वीकायिक जीवों तथा इन्द्र, सूर्य आदि में वैमानिक देवों की कल्पना जैनाधार में दर्शाये गये तथा मान्य स्वस्तिक संकेत पर ही आधारित थी। इस स्वास्तिक वाली मृदा मुहरें[46] भी खुदाइयों में उपलब्ध हुई हैं। बाद में कुछ स्वार्थपरक-भ्रमित व्यक्तियों ने इसमें जहाँ तहाँ सृष्टिकर्ता परमात्मा[47] की कल्पना करते हुए यज्ञों संबंधी ऋचाओं को जोड़कर इस मूल अहिंसक ग्रन्थ[48] को हिंसक बना दिया। ऋग्वेद में उपर्युक्त पूर्व प्रचलित शब्द ही अपने आप में इस बात का ठोस प्रमाण है कि उन्हें तत्कालीन प्रभावना और महत्ता के कारण ही उपयोग में लाया गया। आज उनका अर्थ खींच-तानकर पदार्थ तथा भावार्थ अन्यथा बिठाना, उसकी स्वप्रामाणिकता को नहीं हिला सकता क्योंकि उसमें आधुनिक प्रचलित गणेश, शंकर, कृष्ण, राम, हनुमान नहीं बल्कि वृषभ और ऋषभ हैं। वही महादेव है[49], वही ब्रह्मा है[50], वही विष्णु जो कि धन लक्ष्मी नहीं 'ज्ञानलक्ष्मी' वान है। उनका लांछन बैल है। यह सारे तथ्य पाठकों को ईमानदारी से स्वीकारना होंगे। अपनी स्वयं की महत्ता दिखलाते हुए स्वयं को मनु कहने वाला वह कौन व्यक्ति था जिसने महिलाओं एवं उपेक्षित वर्गों द्वारा वेदों को पढ़ा जाना वर्जित किया ताकि उसके द्वारा योजनापूर्ण ढ़ंग से जोड़ी गयीं विकृतियाँ पाठकों की पकड़ में न आवे, यह भी खोज निकालना होगा। इसी विकृति का फल है कि आज भारत जैसे अहिंसक देश में हर ओर हिंसा का क्रूर ताण्डव है। कृष्ण की गायें कट रही हैं। निरीह पशु जीवन जीने के लिये छटपटा रहे हैं और मनुष्य मनुष्यत्व को ठुकराकर क्रूर अट्टहास करता सबको यातना दे रहा है। यह सब धर्म के नाम पर हो रहा है क्योंकि भारत हिन्दुस्तान है जहाँ वेदों को मान्यता देने वाले हिन्दू रहते हैं और वेदों को यज्ञ-हिंसा वाला जाना जाता है। पार्श्वनाथ, महावीर और बुद्ध नें इन्हीं भ्रामक विकृति और योजनाओं का विरोध कियार तो क्या आश्चर्य? महावीर के गणधर गौतम थे जिन्हें यहाँ भी गौतम मुनि[51] कहकर उल्लिखित तो किया गया है किन्तु विद्वानों के लिये ये अत्यन्त संवेदनशील शोध एवं चिन्तन के विषय प्रस्तुत अवश्य करते हैं।

सम्पूर्ण भारत में आज भी इस वीतरागी धर्म के प्रतीकों सहित अनेक मंदिर, जैनेतर समाज द्वारा मन्दिर, गिरजाघर, मस्जिद की ही भांति उपयोग किये जा रहे हैं। बेलगांव

में तो एक मन्दिर देवगढ़ की भांति पुलिस चौकी है। जबकि जैनियों ने किसी जैनेतर मंदिर अथवा मठ को अपने कब्जे में किया हो ऐसा इतिहास नहीं है। जैन तीर्थों की महत्ता अपनी मौलिकता के साथ जैन साहित्य और सिद्धान्तों का समर्थक करती है जो ठोस प्रमाणों पर आधारित है। यही सिद्ध करता है कि ऋग्वेद श्रमण ऋभदेव प्रभावित एक कृति है तथा भारत का मूल, सर्वप्राचीन धर्म अहिंसा समर्थक त्याग प्रधान धर्म था जिसका प्रभाव समूची मानवता पर दिखता है। धाराशिव की गुफा और खारवेल गुफाओं के जैन साक्ष्य मिटाने का कुचक्री प्रयास चालू है। किन्तु सबको चेतावनी देती सुमेरियन तथा मोहनजोदड़ों पूर्व सभ्यता से मिल रहे प्रतीकों को सम्बल देती हुई जे. पाल. गेटी की मशहूर 'ग्रीक कूरोज'[52] की अत्यंत रोचक सौम्य प्रतिमा 'आर्केयालाजी' पत्रिका के मई-जून 1994 अंक में प्रकाशित चित्र रूप (देकें पृ. 28) यहाँ प्रस्तुत है जो ग्रीक से प्राप्त अत्यन्त प्राचीन धरोहर मूर्ति के रूप में संग्रहालय में सुरक्षित है। इसे कूरोज (क्यूरियोसिटी अर्थात् जिज्ञासा) तो कहा है किन्तु इसका अद्भूत साम्य ऋषभदेव की प्रतिमा से देखा जा सकता है। कायोत्सर्गी मुद्रा में खड़ी यह संगमरमर की मूर्ति न केवल दिगम्बर (नग्न) पुरुष को दर्शाती है बल्कि ऋषभदेव की जैन मूर्तियों की तरह लम्बे केशों के बावजूद उस मूर्ति के चेहरे और गुप्तांग पर बालपन की झलक है। चेहरे पर आन्तरिक निर्दोष प्रसन्नता है जो किसी भी तरह के राग को प्रदर्शित नहीं करते। पलकें झुकी हुई, नासाग्र दृष्टि है। पुष्य वृक्ष और कंधे प्रौढ़ता के प्रतीक हैं। चरणों की स्थिति चार अंगुल का अंतर आगे पीछे दर्शाती हैं जो कदाचित संतुलन हेतु आवश्यक माना गया। माथे पर बालों की छल्लियाँ बाहुबली, गोमटेश जैसी ही हैं। लटे गुंथी सी सधीं हैं जो किसी वीतरागी तपस्वी की द्योतक हैं। यह मूर्ति अति प्राचीन मानी जा रही है और ऋषभ की ओर संकेत देती है। मैं निर्णय नहीं दे रही, मात्र साम्य की चर्चा कर रही हूँ। ग्रीक में इसे रेषभ (एक देव) भी पुकारा गया है। सारे साक्ष्य जैन धर्म की प्राचीनता का डंका बजाते हैं और मानव को अहिंसा और विश्व शांति की ओर प्रेरित करते हैं।

सन्दर्भ स्थल -

1. द वर्ल्ड बुक एनसाइक्लोपीडिया ; वर्ल्ड बुक इंक, 1990
2. आचार्य उमास्वामी, तत्वार्थ सूत्र : वर्णी ग्रंथमाला, वाराणसी, 1949
3. यतिवृषभाचार्य, तिलोयपण्णत्ती, जीवराज जैन ग्रंथमाला, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर
4. क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी, जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष, भाग 1, भारतीय ज्ञानपीठ, 1996
5. आचार्य जिनसेन, ''आदि पुराण'', संपादक, अनुवादक, डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, छठवां प्रकाशन, तृतीय पर्व, पृष्ठ संख्या 59, 1998
6. वेद व्यासं रचित ''ऋग्वेद'', महर्षि दयानन्द सरस्वती संस्थान, नई दिल्ली - 5, भाग 1, पृष्ठ 1 / 1
7. आचार्य शरद कुमार साधक, ऋषभ सौरभ स्मारिका, ऋषभदेव प्रतिष्ठान, मयूर विहार, नई दिल्ली, 1998
8. वेद व्यास रचित ऋग्वेद, महर्षि दयानन्द सरस्वती संस्थान, नई दिल्ली - 5, भाग 1, पृ. 83 / 2, 251 / 9, 316 / 1, 382 / 1, 472 / 8, 478 / 2, 520/ 2, भाग - 2, 266 / 8, 366 / 4
9. आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, पृ. 65, 1998
10. वेद व्यास, ऋग्वेद, महर्षि दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली -5, भाग 1, पृ. 35420 / 22
11. वेद व्यास, ऋग्वेद, महर्षि दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली - 5, भाग 1, पृ. 35420 / 22
12. वही - भाग 2, पृ. 28, 29, 30, 519
13. वही - भाग 1, पृ. 114 / 5, 6, 7, 8, 482, भाग 2, पृ. 55
14. वही - भाग 1, पृ. 114 / 8, 9, 216 / 90 / 21, 216 / 41, 224 / 6, 251 / 8, 251 / 5 / 22, 470 / 4, 481 / 5, भाग 2 पृ. 244 / 6
15. वही - भाग 1, पृ. 251 / 3, 284 / 10 / 17, 440 / 2, 482 / 5 / 8, 511 / 5, भाग 2, पृ. 21 / 22, 474 / 7

16. वही - भाग 2, पृ. 291 / 4 / 12, 385 / 4, 532 / 47
17. वही - भाग 2, पृ. 417 / 5
18. वही - भाग 2, पृ. 477 / 6 / 20, 480 / 2, 504 / 1, 6, 7
19. वही - भाग 2, पृ. 504 / 2
20. वही - भाग 1, पृ. 224 / 6, 10, भावार्थ, भाग 2, पृ. 29 / 4 भावार्थ
21. वही - भाग 1, पृ. 284 / 33 / 4, 7, 8, भाग - 2, पृ. 29 / 26 / 5, 97 / 98 / 1, 242 / 93 / 1, 7, 352 / 2 / 17, 353 / 11 18, 385 / 2 / 15, 407 / 4
22. वही - भाग 1, पृ. 519 / 166 / 1, भाग 2, पृ. 94 / 7, 532 / 47
23. वही - भाग 1, पृ. 4 / 12, भाग 2 29 / 5, 242 / 1, 407 / 3
24. वही - भाग 1, पृ. 417 / 5
25. वही - भाग 1, 220 / 2 पदार्थ, भाग 2, पृ. 407 / 3
26. वही - भाग 1, पृ. 220 / 1, भाग 2, पृ. 29 / 3
27. वही - भाग 1, पृ. 470 / 2
28. वही - भाग 1, पृ. 1 / 2, भावार्थ
29. वही - भाग 1, पृ. 1 / 2, भाग 2 पृ. 504 / 134 / 4, 504 / 3, 4, 5
30. वही - भाग 1, पृ. 251 / 8
31. वही - भाग 1, पृ. 511 / 6
32. वही - भाग 2, पृ. 94 / 1, 2, 3, 5
33. वही - भाग 2, पृ. 97 / 1, 1
34. वही - भाग 2, पृ. 80 / 1, 2, 3, 5
35. वही - भाग 2, पृ. 80 / 1, भावार्थ
36. वही - भाग 1, पृ. 354 / 20 / 22, भाग 2, पृ. 55 / 5
37. वही - भाग 1, पृ. 114 / 5 / 15, 151 / 1, 189 / 22, 220 / 6
38. वही - भाग 1, पृ. 224 / 10 भावार्थ, 284 / 5, 354 / 20 / 22, 469 / 1 पदार्थ, 470 / 8, पदार्थ, 532 / 46
39. हरमन जेकोवी : प्राकृत विमर्श, लखनऊ वि.वि.
40. डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल, प्राकृत विमर्श, लखनऊ वि.वि. सं. 2009
41. ऋग्वेद - भाग 1, 242 / 1, 5, भाग 2, पृ. 151 / 4 पदार्थ 151 / 11, 189 / 20, 21, 22, 27 190 / 38
42. वही - भाग 2, पृ. 523 / 1, 2, 3 / 35
43. वही - भाग 2, पृ. 504 / 4
44. वही - भाग 2, पृ. 80 / 1 से 4
45. वही - भाग 2, पृ. 523 / 2 / 35
46. जैन कला एवं स्थापत्य - भाग 1, भाग 2, भाग 3, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
47. वेद व्यास, 'ऋग्वेद', महर्षि दयानन्द सरस्वती संस्थान, नई दिल्ली - 5, भाग 2, पृ. 98, 99 / 10
48. वही - भाग 1, पृ. 114 / 5 / 15 पदार्थ, पृ. 189 / 22, 220 / 6, 224 / 10, 284 / 5, 354 / 20 / 22, 469 / 1, 470 / 8, 532 / 46
49. वही - भाग 2, पृ. 189 / 24
50. वही - भाग 2, पृ. 96 / 10
51. वही - भाग 1, पृ. 1 / 2 भावार्थ
52. आर्केयालाजी (ए.आई.ए. मैग्जीन) मई, जून, पृ. 22 - 25, 1994

प्राप्त - नवम्बर 98

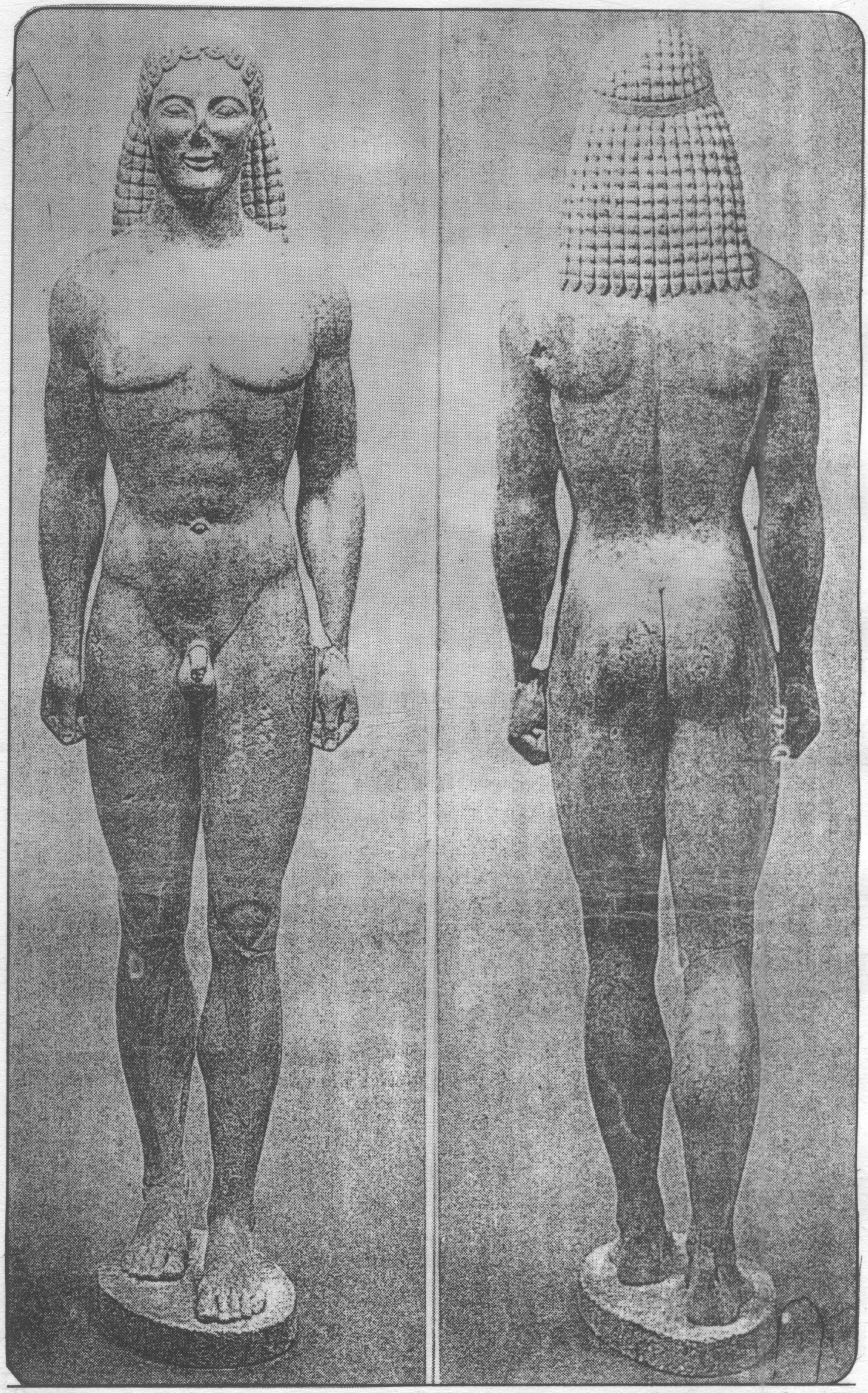

वर्ष - 12, अंक - 1, जनवरी 2000, 29 - 38

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

महामंत्र णमोकार : एक तात्विक एवं वैज्ञानिक विवेचन

■ दयाचन्द जैन *

भारतीय संस्कृति और साहित्य में मंत्र शास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है, उसके अन्तर्गत जैन मंत्र शास्त्र का भी उल्लेखनीय अस्तित्व सुरक्षित है। जैन शास्त्रों में हजारों - लाखों मंत्रों का उल्लेख और उनके यथास्थान प्रयोग दर्शाए गये हैं। शुद्ध मंत्रों की साधना से मानव जन्म - मरण, द्रव्यकर्म (ज्ञानावरण आदि), भावकर्म (राग, द्वेष, मोहादि), और शरीर आदि के अनन्त दु:खों को विनष्ट कर, अशुद्ध आत्मा से परमात्मा बन जाता है यह मंत्रों का परमार्थ सुफल है। इसके अतिरिक्त शुद्ध मंत्रों की साधना से विषनाश, रोगनाश, अतिशय सिद्धि, वशीकरण आदि लौकिक फल भी सिद्ध हो जाते हैं।

व्याकरण से मंत्र शब्द की सिद्धि -

1. प्रथम सिद्धि - दिनादिगणी मन् (ज्ञाने) धातु से ष्ट्रन (त्र - शेष) प्रत्यय का योग करने पर मंत्र शब्द सिद्ध होता है। इसकी व्युत्पत्ति - **'मन्यते - ज्ञायते आत्मादेश: अनेन इति मन्त्र:'** अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा का निज अनुभव या स्वरूप जाना जाता है, उसे मंत्र कहते हैं।

2. द्वितीय सिद्धि - तनादिगणी मन् (अवबोधे) धातु से ष्ट्रन (त्र - शेष) प्रत्यय करने पर मंत्र शब्द सिद्ध होता है, इसकी व्युत्पत्ति - **'मन्यते विचार्यते आत्मादेशो येन स इति मंत्र'** अर्थात् जिसके द्वारा आत्मबल या रत्नत्रय पर विचार किया जाय वह मंत्र कहा जाता है।

3. तृतीय सिद्धि - सम्मानार्थक मन् धातु से ष्ट्रन (त्र - शेष) प्रत्यय करने पर मंत्र शब्द सिद्ध होता है। तदनुसार व्युत्पत्ति - **'मन्यन्ते - सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिता: आत्मान:, यक्षादिशासनदेवता वा अनेन इति मंत्र'** अर्थात् जिसके द्वारा पंचपरमेष्ठी आत्माओं का अथवा यक्ष आदि शासन देवों का सम्मान किया जाय वह मंत्र कहा जाता है। इस प्रकार मंत्र शब्द और उसका सार्थक नाम सिद्ध होता है।

व्याकरण सूत्र - **''सर्वधातुभ्य: ष्ट्रन''** अर्थात् सर्वधातुओं से यथायोग्य धातु के अर्थ में ष्ट्रन (त्र - शेष) प्रत्यय होता है।[1]

मंत्र हजारों एवं लाखों की गणना में होते हैं उन सब में णमोकार मंत्र विशिष्ट एवं अद्वितीय स्थान प्राप्त करता है। उस परम पवित्र मंत्र का उल्लेख इस प्रकार है -

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।। 1 ।।

श्री 108 धरसेनाचार्य के मुख्य शिष्य, मंत्र शास्त्र वेत्ता श्री 108 पुष्पदन्त आचार्य ने शौरसेनी प्राकृत भाषा में इस महामंत्र की रचनाकर विश्व का उपकार किया है। इसमें 5 पद (चरण), 35 अक्षर और 58 मात्राएँ विद्यमान हैं। इस आर्याछन्द में पंच परमेष्ठी परम देवों को सामान्य पदों के प्रयोग से नमस्कार किया गया है जो अनन्त पूज्य आत्माओं का द्योतक है। यह महामंत्र अंकलेश्वर (गुजरात) में चातुर्मास व्यतीत करने के बाद पुष्पदन्त आचार्य ने वनवास देश (उत्तर कर्नाटक का प्राचीन नाम) में वी.नि. सं. 633 के आसपास

* प्राचार्य एवं अधीक्षक, श्री गणेश दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय, सागर - 470 002 (म.प्र.)

प्रस्तुत किया। इस विषय में डा. नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य ने कहा है -

''वनवास देश उत्तर कर्नाटक का प्राचीन नाम है। यहां कदम्ब वंश के राजाओं की राजधानी थी। इस वनवास देश में ही आ. पुष्पदन्त ने जिनपालित को पढ़ाने के लिये 'वीसदि' सूत्रों की रचना की। इनका समय वी.नि.सं. 633 के पश्चात् होना चाहिये।''
यह षट्खण्डागम का प्रथम मंगलाचरण है।

इस महामंत्र का संस्कृत में रूपान्तरण -

नमो अर्हद्‌भ्य:, नम: सिद्धेभ्य:, नम: आचार्येभ्य:, नम: उपाध्यायेभ्य:, नमो लोके सर्वसाधुभ्य:।

महामंत्र का हिन्दी भाषा में रूपान्तरण -

लोक में तीन कालों के सर्व अरहन्तों को नमस्कार हो, लोक में तीन कालों के सर्वसिद्धों को नमस्कार हो, लोक में तीन कालों के सर्व आचार्यों को नमस्कार हो, लोक में तीन कालों के सर्व उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक में तीन कालों के सर्वसाधुओं को नमस्कार हो।

यह महामंत्र अनेक विशेषणों से महत्वपूर्ण सिद्ध होता है, यथा -

1. अनादि निधन मंत्र -

यह मंत्र आदि तथा अन्त से रहित है, कारण कि उत्सर्पण - अवसर्पण रूप कालचक्र में पंचपरमेष्ठी देवों का सदैव अस्तित्व भूतकाल में था, वर्तमान में है, भविष्य में होता रहेगा। कभी अभाव नहीं होगा। इसलिये यह महामंत्र भाव (अर्थ) की अपेक्षा अनादिनिधन है परन्तु शब्द रचना की अपेक्षा सादि सान्त है। पूजन के प्रारंभ में महामंत्र को कहने के पश्चात् पढ़ते हैं -

ओं ह्रीं अनादिमूल मंत्रेभ्यो नम: पुष्पांजलिं क्षिपेत्।[2]

2. मूल मंत्र -

मूल का एक अर्थ मुख्य होता है अत: यह मंत्र सर्व मंत्रों में प्रधान है। मूल का द्वितीय अर्थ जड़ है, जैसे जड़ वृक्ष की उत्पत्ति, वृद्धि, स्थिति, फूलफलोदय में कारण है, उसी प्रकार यह मूल मंत्र भी हजारों मंत्रों की उत्पत्ति, वृद्धि और पुष्पित फलित होने में कारण है। पूजन से अतिरिक्त अन्य ग्रंथों में कहा गया है कि -

अनादिमूल मंत्रोऽयं, सर्वविघ्नविनाशन:।[3]

3. महामंत्र णमोकार मंत्र -

इस णमोकार मंत्र को महामंत्र भी कहते हैं कारण कि यह मंत्र द्वादशांग श्रुतज्ञान का सार है, सर्व स्वर व्यंजनों का इसमें अन्तर्भाव है। इससे 84 लाख योनियों का विच्छेद होता है इसलिये इसको चौरासी लाख मंत्रों का राजा कहा जाता है। द्वितीय कारण यह है कि इस मंत्र की साधना से लौकिक तथा पारलौकिक ऋद्धि - सिद्धि की प्राप्ति होती है अतएव इसको महामंत्र कहते हैं। व्रत, विधान, पूजन, प्रतिष्ठा पाठ और पंचकल्याणक विधानों के जितने मंत्र कहे गये हैं उन सर्व मंत्रों का अन्तर्भाव इस महामंत्र में हो जाता है। हिन्दी के एक कवि ने कहा है -

महामंत्र की जाप किये नर सब सुखपावें
अतिशयोक्ति रंचक भी इसमें नहीं दिखावे।
देखो शून्यविवेक सुभग ग्वाला भी आखिर
हुआ सुदर्शन कामदेव इसके प्रभाव कर॥

4. णमोकार मंत्र या नमस्कार मंत्र -

इस महामंत्र को नमस्कार मंत्र भी कहा जाता है कारण कि इस मंत्र में अनन्त पूज्य आत्माओं को नमस्कार किया गया है, इसलिये इस मंत्र में लोक एवं सर्व पद रखा गया है। इसमें दूसरी विशेषता यह है कि इसमें सामान्य पद निष्ठ अरिहन्त, सिद्ध शुद्ध आत्माओं को ही प्रणाम किया गया है, विशेष नाम के कथन से सीमित आत्माओं को ही नमस्कार हो पाता, किन्तु सामान्य पद के ग्रहण से अनन्त आत्माओं को नमस्कार सिद्ध हो जाता है। पूज्य आत्माओं को प्रणाम करने से आत्मा में विशुद्धि बढ़ती है तथा कष्टों का क्षय होता है।

सन् 1986 में वर्णी भवन सागर म.प्र. में आयोजित सेमिनार में मध्यप्रदेश के तत्कालीन वित्तमंत्री स्व. श्री शिवभानुसिंह सोलंकी ने जो भाषण दिया था उसका सार इस प्रकार है -

''साम्प्रत विश्व में 300 धर्म प्रचलित हैं, तथा प्रसिद्ध 112 विश्व के प्रमुख राष्ट्रों में सिद्ध मंत्र 16 हैं उनमें एक णमोकार मंत्र भी महान प्रसिद्ध है। णमोकार मंत्र की वास्तविक साधना से विश्व के अन्य मानवों के लिये सिद्ध परमात्मा बन जाने का द्वार खुल जाता है। णमोकार मंत्र को नमस्कारपूर्वक शुद्ध पढ़ने से 1600 रक्त के सफेद दाने बढ़ जाते हैं और मान आदि कषाय घटने से रक्त के 1500 सफेद दाने घट जाते हैं, यह सब णमोकार मंत्र का प्रभाव है।''

अर्चनासंग्रह में कहा है -

'एसो पंच णमोकारो, सव्वपावप्पणासणो।' [4]

अर्थात् - यह पंचनमस्कार मंत्र सर्व पापों का नाश करने वाला है। णमोकार मंत्र की अन्य विशेषता -

''णमोकार मंत्र में उच्चरित ध्वनियों से आत्मा में धन और ऋणात्मक दोनों प्रकार की विद्युत शक्ति उत्पन्न होती हैं जिससे कर्म कलंक और लौकिक जीवन के सर्वकष्ट एवं पाप भस्म हो जाते हैं।'' [5]

5. सर्वप्रथम मंत्र (आद्य मंत्र) -

यह णमोकार मंत्र सब मंत्रों में प्रथम (आद्य) मंत्र है अतएव इसकी प्राचीनता एवं अलौकिकता सिद्ध हो जाती है। इसके उत्तरकाल में निर्मित हुए मंत्रों का मूल आधार यही आद्य मंत्र है। इसलिये यह मंत्र अन्य मंत्रों से अपराजित और सर्वविघ्नों का विनाशक है। श्री उमास्वामी आचार्य ने इसी आशय को व्यक्त किया है।

अपराजित मंत्रोयं, सर्वविघ्न विनाशक:।
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मत:।। [6]

तात्पर्य - अपराजित, सर्वविघ्नविनाशक यह महामंत्र सब मंत्रों में प्रथम (आद्य) मंत्र आचार्यों द्वारा मान्य किया गया है।

6. प्रथम मंगल मंत्र -

जो अक्षय आत्मिक सुख को प्रदान करे उसे मंगल कहते हैं। अथवा जो हिंसादि पापों को एवं ज्ञानावरणादि कर्मों को विनष्ट करे उसे मंगल कहते हैं अथवा जो आत्मज्ञान या ध्यान के निकट प्राप्त करावे उसे मंगल कहते हैं। णमोकार मंत्र सर्वप्रथम मंगलमय है और मंगल को करने वाला है इसलिये सर्वप्रथम मंगलमय मंत्र है। उसी विषय को आचार्य

उमास्वामी ने स्पष्ट किया है -

'मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं' [7]

अर्थात् - यह महामंत्र सर्व मंगल मंत्रों में प्रथम मंगलमंत्र है।

7. मंगल सूत्र -

चत्तारि मंगलं - अरहंता मंगलं, सिद्धामंगलं, साहूमंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा - अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णतो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि - अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अर्थात् - अरिहन्त, सिद्ध, साधु एवं जैन धर्म ये चार देव, लोक में मंगल, उत्तम और शरणरूप हैं। इस मंगल सूत्र में संक्षिप्त रूप से साहू शब्द आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी का वाचक है, अतः यह मंगलमंत्र का मंगल सूत्र है। सूत्र संक्षिप्त अक्षरवाला होता है।

8. ग्रहारिष्ट निवारक मंत्र -

यह महामंत्र दूषित नवग्रहों को शान्त करने वाला होता है। किस मंत्र के पद से किस ग्रह की शान्ति होती है इसका विवरण इस प्रकार है -

ओं ह्रीं णमो अरिहंताणं	-	सूर्य, मंगल ग्रहों की शान्ति।
ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं	-	चन्द्र, शुक्र ग्रहों का निवारण।
ओं ह्रीं णमो आइरियाणं	-	गुरु ग्रह दोष की शान्ति।
ओं ह्रीं णमो उवज्झायाणं	-	बुध ग्रह का निराकरण।
ओं ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं	-	शनि, राहु, केतु ग्रहों की शान्ति।

अतिशय पुण्यात्मा चौबीस तीर्थंकरों के भक्तिपूर्वक अर्चन से भी नवग्रहों की शान्ति होती है। किस तीर्थंकर के अर्चन से किस दूषितग्रह की शान्ति होती है इसका क्रमशः विवरण इस प्रकार है -

1. ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, सुपार्श्वनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ	-	गुरूग्रहशान्ति
2. पद्मप्रभ	-	सूर्यग्रहशान्ति।
3. चन्द्रप्रभ	-	चन्द्रग्रह शान्ति।
4. विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, नमिनाथ, वर्धमान	-	बुधग्रहशान्ति
5. वासुपूज्य	-	मंगलग्रह शान्ति
6. पुष्पदन्त	-	शुक्रग्रह शान्ति
7. मुनिसुव्रतनाथ	-	शनिग्रह शान्ति
8. नेमिनाथ	-	राहुग्रह शान्ति
9. मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ	-	केतुग्रह शान्ति

भद्रबाहुचरूवाचैवं, पंचमः श्रुतकेवली।
विद्या प्रवादतः पूर्वात्, ग्रहशान्ति रूदीरिता॥ 8। [10]

अर्थात् - पंचम श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहु आचार्य ने कहा है कि विद्याप्रवाद पूर्व से

यह नवग्रह शान्ति विधान कहा गया है।

महामंत्र में ध्वनि विज्ञान -

इस महामंत्र में स्वर व्यंजन तथा तदनुसार कुछ ध्वनियां भी विद्यमान हैं। ध्वनि विज्ञान के आधार पर वर्ग का आद्य अक्षर अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिये समस्त मंत्रों की मूलभूत मातृकाएं ध्वनि रूप में इस महामंत्र के अन्तर्गत इस प्रकार विद्यमान हैं -

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ल लृ ए ऐ ओ औ अं अः। क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ् न्, ट् ठ् ड् ढ् ण्, त् थ् द् ध् न्, प् फ् ब् भ् म् य् र्, ल् व् श् ष् स् ह्। इन ध्वनि रूप मातृकाओं के विषय में आचार्य जयसेन ने प्रतिपादन किया है -

अकारादि क्षकारान्ता वर्णाः प्रोक्तास्तु मातृकाः।
सृष्टिन्यास स्थितिन्यास - संहृतिन्यासतस्त्रिधा॥ [11]

सारांश - अकार से लेकर क्षकार (क् + ष् = क्ष् + अ) पर्यन्त मातृका वर्ण कहे जाते हैं। इनका क्रम तीन प्रकार का होता है 1. सृष्टि कर्म, 2. स्थिति क्रम, 3. संहार क्रम। णमोकार मंत्र में मातृका ध्वनियों का तीनों प्रकार का क्रम सन्निविष्ट है। इसी कारण यह महामंत्र आत्मकल्याण के साथ लौकिक अभ्युदयों को भी देने वाला है। संहारक्रम ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के विनाश को अभिव्यक्त करता है। सृष्टि क्रम और स्थिति क्रम आत्मानुभूति के साथ लौकिक अभ्युदयों की प्राप्ति में सहायक होता है।

बीजाक्षरों की निष्पत्ति भी इसी महामंत्र से होती है, इसी कारण इस मूल मंत्र से हजारों मंत्रों *का जन्म होता है। इसके विषय में आ. जयसेन का मत -*

हलो बीजानि चोक्तानि, स्वराः शक्तय ईरिताः। [12]

सारांश - ककार से लेकर हकार पर्यन्त व्यंजनवर्ण वीन संज्ञक कहे जाते हैं और अकारादि स्वर शक्तिरूप कहे जाते हैं। मंत्र बीजों की निष्पत्ति बीज और शक्ति के संयोग *से होती है।* इसलिये इस महामंत्र में संपूर्ण ध्वनियों की शक्तियां ध्वनित होती है। इसमें श्रुतज्ञान के समस्त अक्षरों का समावेश हो जाता है अतः यह महामंत्र द्वादशांग श्रुतज्ञान का सार है। इसमें अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रहवाद, अध्यात्मवाद, तत्व, पदार्थ, द्रव्य, प्रमाण, नय, मुक्ति और मुक्तिमार्ग आदि संपूर्ण लोक कल्याणकारी सिद्धांत ध्वनित होते हैं।

महामंत्र का संक्षिप्तरूप और उसकी सिद्धि -

यदि कोई संक्षिप्त रूचि वाला व्यक्ति महामंत्र को एक अक्षर में कहने की इच्छा व्यक्त करता है तो आचार्यों ने महामंत्र का लघुरूप शास्त्रों में दर्शाया है। 35 अक्षरों वाले मंत्र को एकाक्षर मंत्र बनाने का चमत्कार -

अरहंता असरीरा, आइरिया तह उवज्झया मुणिणो।
पढमक्खरणिप्पण्णो, ओंकारों पंच परमेष्ठी॥ [13]

भावसौन्दर्य - **'नामैकदेशेन नाम मात्र ग्रहणम्'** अर्थात् नाम के एक देश से भी संपूर्ण नाम का ग्रहण या व्यवहार होता है इस नीति के अनुसार अरहन्त का अ, अशरीर (सिद्ध) का अ, इस प्रकार अ + अ = आ, 'अकः सवर्णे दीर्घः' इस सूत्र से एक दीर्घ **आ** हो गया। आचार्य का आ + आ (पूर्वका) यहां पर भी पूर्व सूत्र से आ + आ = आ हो गया। पश्चात् उपाध्याय का 'उ' आद्गुणः इस सूत्र से आ + उ = ओ

आदेश हो गया। मुनि (साधु) का प्रथम अक्षर म्। यहां पर मंत्र शास्त्र के अनुसार म् को अनुस्वार होने पर 'ओं' यह एकाक्षर मंत्र सिद्ध होता है। इसी ओं को ओंकार कहते हैं। शास्त्र प्रवचन के आदि में मंगलाचरण इस तरह प्रसिद्ध है -

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिन:।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नम:॥ 1॥

विज्ञान के आलोक में महामंत्र का महत्व -

भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित आत्मिक विज्ञान बहुत सूक्ष्म एवं व्यापक है। उसकी तुलना आधुनिक भौतिक विज्ञान नहीं कर सकता। भौतिक विज्ञान जिस सीमा पर समाप्त होता है उस सीमा से आत्मिक विज्ञान प्रारंभ होता है। तथापि अनेक दृष्टियों से आध्यात्मिक विज्ञान और भौतिक विज्ञान, अधिकांश तत्वों में साम्य रखता है। नीचे कुछ वैज्ञानिकों के उद्धरण किये जाते हैं जिनसे महामंत्र का महत्व प्रतीत होता है -

आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस प्रकार के ट्रांसलेटर यंत्रों का आविष्कार किया है जिससे वक्ता के एक भाषा का अनेक भाषाओं में एक साथ अनुवाद होता जाता है। लोकसभा के अधिवेशन में इसका प्रयोग होता है। इसी प्रकार भगवान महावीर की विशाल सभा (समोशरण) में उनकी ओंकार ध्वनि (दिव्य देशना) का एक साथ अनेक भाषाओं में अनुवाद होता जाता है अर्थात् सभी भाषा - भाषी मानव अपनी - अपनी भाषा में समझते जाते हैं। एक अतिशय यह भी है कि संज्ञी पंचेन्द्रिय पशु - पक्षी भी उस देशना को अपनी - अपनी भाषा में समझ लेते हैं, अन्यथा उनको आनन्दानुभव नहीं होता।

जिनकी ध्वनि है ओंकार रूप, निरक्षरमयमहिमा अनूप[14]

वैज्ञानिक दृष्टि से णमोकार मंत्र का मन पर प्रभाव पड़ता है, एवं आत्मशक्ति का विकास होता है उससे पवित्रता आती है, इसी कारण यह मंत्र सर्वकार्यों में सिद्धिदायक माना गया है। इस विषय का उद्धरण भी मिलता है जैसे - ''**मानव मस्तिष्क में ज्ञानवाही और क्रियावाही ये दो प्रकार की नाड़ियां होती हैं। ज्ञानवाही नाड़ियां और मस्तिष्क के ज्ञान केन्द्र, मानव के ज्ञान विकास में एवं क्रियावाही नाड़ियां और मस्तिष्क के क्रिया केन्द्र, चारित्र के विकास की वृद्धि के लिये कार्य करते हैं। क्रिया केन्द्र और ज्ञानकेन्द्र का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण णमोकार मंत्र की आराधना, स्मरण और चिंतन से, ज्ञान केन्द्र और क्रिया केन्द्रों का समन्वय होने से मानवमन सुदृढ़ होता है और आत्मिक विकास की प्रेरणा मिलती है।**[15]

वैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध किया है कि शब्दों की तरंगे (ध्वनियां) मानवों एवं पशुओं के मन में टकराती हैं अतएव उनका मानस पटल प्रभावित होता है। इसी प्रकार श्रुतज्ञानी जैनाचार्यों ने आधुनिक विज्ञान से हजारों वर्ष पूर्व यह सिद्ध कर दिया है कि महामंत्र की बीज एवं शक्ति के संयोग से उत्पन्न तरंगें (ध्वनियां) पशुओं एवं मानवों के मानस पटल में टकराती हैं, अतएव इनसे मानवों एवं पशुओं का भी हित होता है।

आधुनिक वैज्ञानिक भी इस तथ्य को स्वीकृत करते हैं कि बिना आत्मबल या श्रद्धा के किसी लौकिक कार्य में भी सफलता प्राप्त करना संभव नहीं है। इस विषय में अमेरिकन डाक्टर होआर्ड रस्क ने अभिमत व्यक्त किया है -

''**रोगी तब तक स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकता, जब तक वह अपने आराध्य में विश्वास नहीं करता है। आस्तिकता ही समस्त रोगों को दूर करने वाली है। जब रोगी को चारों ओर से निराशा घेर लेती है, उस समय आराध्य के प्रति की गई प्रार्थना**

प्रकाश का कार्य करती है, प्रार्थना का फल अचिन्त्य होता है। वह मंगल को देती है।'' [16]

अमेरिका के द्वितीय वैज्ञानिक जज हेरोल्ड मेहिना का अभिमत है - **''आत्मशक्ति का विकास तभी होता है जब मनुष्य यह अनुभव करता है कि मानव शक्ति से परे भी कोई वस्तु है। अत: श्रद्धापूर्वक की गई प्रार्थना बहुत चमत्कार उत्पन्न करती है।''**

इस उद्धरण में भी णमोकार मंत्र की प्रार्थना के लिये संकेत किया गया है।

अमेरिका के एक तीसरे वैज्ञानिक डा. एलफ्रेड होरी का अभिमत है कि - **''सभी बीमारियां शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक क्रियाओं से सम्बद्ध हैं अत: जीवन में जब तक धार्मिक प्रवृत्ति का उदय नहीं होगा, रोगी का स्वास्थ्य लाभ करना कठिन है। प्रार्थना धार्मिक प्रवृत्ति पैदा करती है। आराध्य के प्रति की गई भक्ति में बहुत बड़ा आत्म संबल है। उच्च या पवित्र आत्माओं की आराधना जादू का कार्य करती है।''** [17]

उक्त उद्धरण में भी महामंत्र की आराधना के प्रति संकेत किया गया है कि महामंत्र की पवित्र आत्माओं की प्रार्थना आत्मसंबल को बढ़ाती हैं।

जैन दर्शन में महामंत्र के महत्व को अभिव्यक्त करने वाली आचार्यकृत अनेक रचनाएं विद्यमान हैं यथा णमोकार मंत्र माहात्म्य, नमस्कारकल्प, नमस्कार माहात्म्य, णमोकार मंत्र की महिमा आदि। आचार्य उमास्वामी द्वारा णमोकार मंत्र के विषय में कथित माहात्म्य इस प्रकार है -

यह महामंत्र संसार में सार है, त्रिलोक में अनुपम है, हिंसा आदि सर्व पापों का नाशक है, जन्ममरण आदि रूप संसार का उच्छेदक है, सर्प आदि जीवों के तीक्ष्ण विष का नाशक है, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का समूह नाशक है, लौकिक एवं अलौकिक कार्यों की सिद्धि का प्रदायक है, मुक्ति सुख का जनक है, इसका ध्यान करने से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, पुष्पदंत आचार्य द्वारा प्रणीत इस महामंत्र को प्रति समय जपते रहो। इसका शुद्ध ध्यान करने से जन्ममरण आदि 18 दोषों से मुक्ति होती है।

यह महामंत्र देवेन्द्रों की विभूति का प्रदायक है, मुक्ति लक्ष्मी को सिद्ध कराने वाला, चतुर्गति के कष्टों का उच्छेदक, समस्त पापों का विनाशक, दुर्गति का निरोधक, मोह माया का स्तंभक, विषयाशक्ति का प्रक्षीणक, आत्मश्रद्धा का जाग्रतिकारक और यह महामंत्र प्राणि सुरक्षाकारक है।

महामंत्र से स्वजीवन का उद्धार करने वाले व्यक्ति -

1. प्राचीन भारत के महापुरनगर में मेरूदत्त श्रेष्ठी के पुत्र पद्मरूचि नामक युवक ने, एक मरणासन्न बैल को कर्ण में महामंत्र सुनाया, बैल शरीर त्याग कर उसी नगर के नृप का वृषभ ध्वज नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। पद्मरूचि और वृषभ ध्वज दोनों मित्र, धर्म की साधना से द्विस्वर्ग में देव हुए। [18]

2. बिहार प्रान्तीय राजगृह नगर के नृप सत्यन्धर के सुपुत्र विद्वान जीवन्धरकुमार ने एक नदी के तट पर, मरणासन्न कुत्ते के कान में, दयाभाव से महामंत्र सुनाया। मंत्र के प्रभाव से कुत्ता अगले भव में यक्षेन्द्र हुआ। यक्षेन्द्र ने कृतज्ञता व्यक्त करते हुए जीवन्धर के लिये तीन मंत्र प्रदान किये। [19]

3. वाराणसी नगरी में एक सन्यासी ठूंठ जलाकर तप कर रहा था। भ्रमण करते हुए तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने अवधिज्ञान से वहां जान लिया कि इस लक्कड़ में नाग-नागिनी का एक जोड़ा है। लक्कड़ चीर कर उन्होंने जलते हुए सर्पयुगल को णमोकार मंत्र सुनाया। मंत्र के

प्रभाव से सर्प धरणेन्द्र देव और नागिन उसकी पद्मावती देवी हुई। दोनों ने मुनिराज पार्श्वनाथ का उपसर्ग दूर किया।[20]

4. महामंत्र के उच्चारण से सुभग ग्वाले का उद्धार -

चम्पापुरी निवासी सुभग ग्वाले को निकटभव्य जानकर एक मुनिराज ने णमोकार मंत्र का उपदेश दिया। एक समय गायों की रक्षार्थ प्रवाहपूर्ण गंगा में वह कूद पड़ा। महामंत्र का उच्चारण करते हुए उसका मरण हो गया। वह ग्वाला अपने ही मालिक सेठ वृषभदास के यहां सुदर्शनकुमार नाम का पुत्र हुआ। कामदेव सुदर्शनकुमार तपस्या करते हुए पाटलिपुत्र (पटनानगर) से मुक्ति को प्राप्त हुए।[21]

5. महामंत्र के ध्यान से राजकुमार वारिषेण का चमत्कार -

मगधदेश के सम्राट श्रेणिक का पुत्र वारिषेण चतुर्दशी की रात्रि में श्मशान में महामंत्र का जाप कर रहा था। असत्य चोरी के आरोप में राजा के आदेश से सैनिक द्वारा तलवार का प्रहार गले में किया गया। महामंत्र के प्रभाव से खड्ग फूलों की माला बन गई। वारिषेण मुनिदीक्षा लेकर तप करने लगे।[22]

6. महामंत्र को सिद्ध करने का चमत्कार -

मगधदेशीय राजगृहनगर में श्रेष्ठि जिनदत्त, कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में श्मशान प्रांगण में मूलमंत्र के ध्यान में मग्न थे। स्वर्ग से आये विद्युत्प्रभ देव ने उनकी अटल परीक्षा के पश्चात् प्रसन्न होकर जिनदत्त के लिये आकाशगामिनी विद्या प्रदान की। वह प्रतिदिन मेरूपर्वत की वंदना करने लगे।[23]

7. महामंत्र को सिद्ध करने का चमत्कार -

राजगृहनगर के अंजनकुमार ने जिनदत्तश्रेष्ठि के सदुपदेश से शुद्ध भावों से महामंत्र को विधिपूर्वक सिद्ध किया। सिद्ध हुई उस आकाशगामिनी विद्या ने उसको मेरूपर्वत के अकृत्रिम चैत्यालय में भेज दिया। वहां मुनिराज के उपदेश से अंजन ने मुनि दीक्षा ग्रहण की। वहां से कैलाशपर्वत पर जाकर तप करते हुए सातवें दिन उन्होंने कैलाश से मुक्ति को प्राप्त किया।[24]

8. महामंत्र की साधना से महासतियों के अतिशय -

अयोध्या में अपने सतीत्व को निर्दोष सिद्ध करने के लिये सती सीता ने महामंत्र के प्रभाव से, प्रचण्ड अग्नि कुण्ड में व्यक्त हुए जल के मध्य सुवर्णमय सिंहासन प्राप्त किया। अनन्तर आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। और तप करते हुए 16 वें स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया।[25]

9. काशीराज की सुपुत्री सुलोचना सती ने महामंत्र के प्रभाव से ग्राहग्रसित गंगा में डूबते हुए हाथी को सुरक्षित कर दिया था। हाथी पर बैठी हुई सुलोचना ने आनन्द से गंगा को पार किया।[26]

10. नारायणदत्ता नामक सन्यासिनी के बहकावे में आकर मालव नरेश चण्डप्रद्योत ने, रौरवपुर नरेश उद्दायन की पत्नी प्रभावती पर मोहित होकर, नृप उद्दायन की अनुपस्थिति में रौरवपुर पर आक्रमण किया। उस समय रानी प्रभावती ने, अन्न जल का त्याग कर महामंत्र की आराधना की। तत्काल एक देव ने आकर उस सेना को उड़ाकर प्रभावती के शील को सुरक्षित किया। अन्त में रानी ने आर्यिका दीक्षा लेकर जीवनान्त में पंचमस्वर्ग में देवपद को प्राप्त किया।[27]

11. अंगदेश की चम्पानगरी के निवासी श्रेष्ठी प्रियदत्त की बाल ब्रह्मचारिणी पुत्री अनन्तमती ने संयम से सहित धर्म विज्ञान का अर्जन किया। दुर्भाग्यवश उसने जीवन में अनेक भयंकर कष्ट उठाये, परन्तु संयम के प्रभाव से देवों ने रक्षा की। अन्त में कमल श्री आर्यिका के निकट आर्यिका दीक्षा को स्वीकृत किया। मरण समय णमोकार मंत्र के ध्यान के प्रभाव से बारहवें सहस्रार स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया।[28]

12. काशी नरेश की सुपुत्री सुलोचना सती जैन धर्म में श्रद्धावती एवं ज्ञानवती प्रसिद्ध थी। एक दिन उस की सखी विन्ध्यश्री उद्यान में फूल तोड़ने गई। वहां सहसा विन्ध्यश्री को एक सर्प ने काट लिया, वह मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। सुलोचना ने महामंत्र सुनाया, जिसके प्रभाव से चलकर वह गंगा देवी स्वर्ग में हुई।[29]

13. सोमासती को सासु ने शील भंग का कलंक लागया। परिवारजनों ने उसकी परीक्षा के लिये घट में सर्प रखकर उसको निकालने के लिये कहा, सोमा ने नमस्कार मंत्र के शुद्ध स्मरणपूर्वक सर्प को निकालने का प्रयास किया तो सर्प के स्थान पर फूल माला का उद्‌भव हुआ। चारों ओर से सीमा की जयध्वनि हुई। यह महामंत्र का प्रखरप्रभाव है।[30]

इस प्रकार महामंत्र के प्रभाव के विषय में जैन दर्शन के प्रथमानुयोग शास्त्रों में बहुत कथाएं प्रसिद्ध हैं। विस्तार के भय से यहां पर कतिपय कथाओं का ही दिग्दर्शन कराया गया है।

14. महामंत्र के अविनय से चक्रवर्ती सुभौम का घोर पतन -

भारत का आठवां चक्रवर्ती सुभौम बहुत रसनालोभी था। आदत के अनुसार उसने स्वादिष्ट खीर बनाई। खाने के लोभ से उसने गर्म खीर खाना प्रारंभ किया तो हाथ एवं जीभ जल गई। उसने क्रोध से गर्म खीर का थाल जयसेन - पाचक को मारा, तो पाचक मरकर व्यन्तर देव हुआ। प्रतिक्रिया की दृष्टि से व्यन्तर ने एक दिन श्रेष्ठ फल सुभौम को भेंट किये। फलखाने पर वह प्रसन्न हुआ। चक्री ने कहा, ये फल किस उद्यान में हैं हमें ले चलो। चक्री चला, मार्ग में एक नदी पार करते समय देव ने माया से जल वर्षा कर नदी वेग बढ़ा दिया। चक्री व्याकुल हुआ, उसने तापसी व्यन्तर से कहा, तापस बचाओ, जीवन समाप्त हो रहा है। तापस ने कहा - महाराज अब हमारे वश की यह बात नहीं रही, हम उपद्रव नहीं टाल सकते। परन्तु एक उपाय रक्षा का हो सकता है कि यदि आप महामंत्र को जल में लिखकर अपने पैरों से मिटा देवें तो आप बच सकते हैं, अन्यथा नहीं। चक्री ने तत्काल जल में महामंत्र लिखकर पैरों से मिटा दिया, वह तत्काल जल में डूबकर मृत हो गया और सप्तम नरक में नारकी हो गया। यह महामंत्र के अविनय करने का फल है। अतः किसी भी व्यक्ति को महामंत्र का अविनय नहीं करना चाहिये।[31]

भारतीय संस्कृति और साहित्य में जैन मंत्र शास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है। जैन शास्त्रों में वर्णित लाखों मंत्रों की साधना से एवं उनके मूलमंत्र की साधना से लौकिक और अलौकिक कार्य सिद्ध होते हैं। व्याकरण से मंत्र शब्द सिद्ध होता है। णमोकार मंत्र के महत्व बोधक चार नाम प्रसिद्ध हैं 1. अनादि निधन मंत्र, 2. मूल मंत्र, 3. महामंत्र, 4. णमोकार मंत्र (नमस्कार मंत्र)। म.प्र. के तात्कालिक वित्तमंत्री स्व. श्री शिवभानुसिंह सोलंकी द्वारा महामंत्र की पर्याप्त प्रशंसा की गई है। इस मंत्र में व्याप्त धन और ऋणात्मक विद्युत शक्तियों से कर्मरज और लौकिक कष्ट भस्म हो जाते हैं। इसमें द्रव्य एवं भावश्रुत का समावेश हो जाता है, यह द्वादशांग का सार है। प्राकृतभाषा के इस महामंत्र का संक्षिप्त रूप एकाक्षर मंत्र 'ओं' सिद्ध होता है। विज्ञान के आलोक में भी महामंत्र का महत्व सिद्ध

होता है। आचार्य उमास्वामी द्वारा रचित 'णमोकार मंत्र माहात्म्य' महामंत्र के अपूर्व माहात्म्य को दर्शाता है। इस लेख में 14 कथाओं द्वारा महामंत्र का अप्रतिम अतिशय सिद्ध होता है। दूषित नवग्रहों की शान्ति इसी महामंत्र से होती है। इस मंत्र के अविनय करने का फल भी कथांश के उद्धरण से दर्शाया गया है।

सन्दर्भ —

1. वरदराजाचार्य: मध्यसिद्धान्तकौमुदी: उणादिप्रकरण:, पृ. 445
2. संस्कृत नित्य पूजन, पृ. 17
3. मंगल मंत्र णमोकार: एक चिंतन, पृ. 63
4. अर्चना संग्रह, पृ. 11
5. मंगल मंत्र णमोकार एक अनुचिंतन, पृ. 12
6. धर्मध्यानदीपक: णमोकार मंत्रमाहात्म्य: श्लो. 29, पृ. 7
7. अर्चना संग्रह, पृ. 24
8. विमल भक्ति संग्रह, पृ. 34 - 35
9. णमोकार मंत्र की महिमा, पृ. 4
10. नवग्रहशान्ति स्तोत्र, पद्य 8
11. जयसेनाचार्य: जयसेन प्रतिष्ठापाठ, श्लो. 376
12. जयसेन प्रतिष्ठापाठ, श्लो. 377
13. वृहद् द्रव्य संग्रह, गाथा 49, ब्रह्मदेव संस्कृत टीका अन्तर्गत
14. दि. जैन पूजन संग्रह, पृ. 106
15. मंगल मंत्र णमोकार : एक अनुचिंतन, पृ. 78
16. मंगल मंत्र णमोकार : एक अनुचिंतन, पृ. 21 द्वि सं. प्रस्तावना
17. तथैव - पृ. 22
18. तथैव
19. क्षत्रचूडामणि
20. पार्श्वनाथचरित
21. आराधना कथा कोष
22. श्रेणिकचरित्र
23. डा. पन्नालाल : रत्नकरण्ड श्रावकाचार
24. मोक्ष मार्ग की सच्ची कहानियां
25. सीता चरित्र
26. सुलोचना चारित्र
27. मंगल मंत्र णमोकार : एक अनुचिंतन
28. डा. पन्नालाल : रत्नकरण्ड श्रावकाचार
29. मंगल मंत्र णमोकार : एक अनुचिंतन
30. आराधना कथा कोष
31. मंगल मंत्र णमोकार : एक अनुचिंतन

प्राप्त - 22.12.95

वर्ष - 12, अंक - 1, जनवरी 2000, 39 - 42

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

हिन्दू और जैन आर्थिक चिंतन : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में*

■ उदय जैन**

भारत और पश्चिम के अनेक विद्वान आज भी नहीं मानते कि हमारे देश में अर्थ चिंतन की कोई धारा रही है या कि हमारे यहाँ कोई अर्थशास्त्र था। उसके आर्थिक विचार पुष्पित और पल्लवित हुए। वे अधिक से अधिक कौटिल्य के अर्थशास्त्र को भारत की सर्वाधिक प्राचीन अर्थशास्त्र की पुस्तक मानते हैं। जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। स्वयं कौटिल्य ने अपनी पुस्तक में 117 बार इस बात का उल्लेख किया है कि मेरे पूर्व के अर्थ चिंतकों के विचारों से मैं सहमत नहीं हूँ। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दुस्तान में अति प्राचीन काल से अर्थ चिंतन की एक लम्बी परंपरा रही है - जिसके स्रोत वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, जैन आगम, विदुर नीति, याज्ञवल्क्य नीति, मनुस्मृति, इत्यादि ग्रंथ हैं - जिनमें वाणिज्य, आयात - निर्यात व्यापार, कर प्रणाली मुद्रा, ब्याज, लाभ, श्रम, स्व नियोजन, वितरण, समृद्धि और गरीबी आदि के सम्बन्ध में विचार किया गया है हमारे यहाँ उपनिषद में कहा गया है -

**''ईषा वास्यं इदं सर्वें यात्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्य स्विद् धनम्॥''**

इस मंत्र की भावना है कि त्यागपूर्वक भोग करो, लालच मत करो, मिल बाँट कर खाओ। संभवत: यह मंत्र भारत के सबसे प्राचीन मंत्रों में से एक है - जिसमें हमारे देश का अर्थ चिंतन प्रतिध्वनित हुआ है।

फिर जैन आगमों में बिखरे अर्थ चिंतन के सूत्रों और महावीर के अर्थशास्त्र की बात करते हैं, तो अनेकों को बड़ा आश्चर्य लगेगा कि महावीर तो भगवान हैं, वीतरागी हैं, तीर्थंकर है, तो उनका अर्थ चिंतन कैसा? हम सिद्ध महावीर की बात नहीं कर रहे हैं, साधक महावीर की बात कर रहे हैं। सिद्ध महावीर अर्थ की बात नहीं करेंगे। महावीर तीर्थंकर हैं तो भी वे साधना में भी रह चुके हैं। उस समय महावीर हर बात कहने के अधिकारी थे।[1]

जब हम त्यागपूर्वक भोग की बात करते हैं या लालच नहीं करने की बात करते हैं तो उसका तात्पर्य अत्यंत व्यापक है। अर्थात अपने लिए जितना आवश्यक है उससे अधिक की लालसा मत रखो। स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त धन को सतत प्रवाहमान बनाए रखने की प्रेरणा देगा। मेरे लिए जितना आवश्यक है उतना ही रखकर शेष धन समाज को दे देना चाहिए। अर्थ का यह भ्रमण चक्र बहुत महत्वपूर्ण है। यह अर्थ का प्राणायाम है। शरीर प्राण वायु के बिना जीवित नहीं रह सकता। प्रत्येक कोष को निरन्तर प्राणवायु मिलती रहे, यह अति आवश्यक है। श्वासोच्छवास द्वारा शरीर प्राणवायु ग्रहण करता है और दूषित वायु उत्सर्जित कर देता है। 'प्राणायाम' द्वारा इस प्रक्रिया को हम इस प्रकार नियमित करते हैं कि फेफड़ों द्वारा अधिक से अधिक प्राण वायु, रक्त में सम्मिश्रित हो जाए और फिर रक्त संचार द्वारा प्रत्येक कोष को उपलब्ध हो जाए। तब शरीर स्वस्थ रहता है। यदि इस भ्रमण चक्र में कहीं अवरोध हो जाय या रक्त कहीं एक ही स्थान पर इकट्ठा होने लगे तो जीवन के लिए संकट हो जाएगा। ठीक इसी प्रकार समाज के स्वस्थ रहने के लिए 'अर्थायाम' भी जरूरी है। समाज के प्रत्येक घटक के लिए ''अर्थ'' की व्यवस्था

* तृतीय क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी व्याख्यान, इन्दौर, 19.8.99 का सम्पादित रूप

** प्रसिद्ध अर्थशास्त्री, ब - 8, वि.वि. प्राध्यापक निवास, ए.बी. रोड, इन्दौर

होना उसी प्रकार आवश्यक है - जैसे रक्त संचार द्वारा प्रत्येक कोष के लिए प्राणवायु। अतः समाज में निरन्तर अर्थ संचार होते रहना चाहिए। इस अर्थ संचार को सुव्यवस्थित बनाए रखना ही 'अर्थायाम' है।[2]

प्राचीन भारतीय, मनीषा ने प्रारंभ से ही यह अनुभव कर लिया था कि अर्थ का निरन्तर संचार करवाने वाली व्यवस्था ही समाज में अर्थ साम्य बनाए रखेगी। इसीलिए पुराना भारतीय व्यापारी आपूर्ति बनाए रखने में विश्वास करता था। वह इस बात की प्रतिस्पर्धा करता था कि कौन अधिक से अधिक लोगों तक माल, लाभ की कम दर पर भी पहुँचायेगा। जबकि पश्चिम का व्यापारी प्रत्येक बार सामान की बिक्री पर एक 'निश्चित लाभ' लेना आवश्यक मानता है। इसीलिये पश्चिम के लिए 'लाभ' ही सब कुछ है।

पश्चिम का पूरा चिंतन 'लाभ' पर आधारित है। इसलिये वह 'अभाव' की बात करता है। बाजार में चीजों का अभाव पैदा करो, भले ही कृत्रिम कमी पैदा करो - ताकि अधिक से अधिक 'लाभ' कमाया जा सके। इसलिये हिन्दू और जैन अर्थ चिंतन 'बाहुल्यता एवं समृद्धि' का चिंतन है। और हमने सबके लिए सुख, समृद्धि और स्वास्थ्य की कामना की है। महावीर ने कभी समृद्धि का विरोध नहीं किया, वे इच्छा के विरोधी नहीं हैं - इसलिये समृद्धि के भी विरोधी नहीं हैं। उन्होंने कहा - **''इच्छा हु आगास समा अणंतया''** (इच्छा आकाश के समान अनन्त है)। हाँ, उन्होंने 'सम्यक्त्व' की बात की - सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र।

इसीलिये हिन्दू और जैन अर्थशास्त्र भविष्य का अर्थशास्त्र है। वह 21 वीं सदी का अर्थशास्त्र है। जिसमें इस्लाम के ब्याज रहित समाज के निर्माण, मार्क्स के शोषण रहित समाज के निर्माण, गाँधी के विकेन्द्रीकृत अर्थ रचना के निर्माण, और यीशु के कल्याणकारी समाज के तत्व छिपे हुए हैं। जो समग्र विश्व को पर्यावरण के खतरों से मुक्ति दिला सकता है।

किन्तु यह होगा कैसे? इस सम्बन्ध में कुछ बातों पर विचार करना अत्यावश्यक है।

80 के दशक में जब सोवियत रूस में साम्यवाद का बुर्ज ढह गया और पूरी दुनिया को साम्यवादी विचार धारा में रंगने का स्वप्न तिरोहित हो गया तथा मार्क्सवाद अपनी शताब्दी भी नहीं मना सका। अपने ही अन्तर्विरोधों से साम्यवादी विचारधारा का पतन हो गया जबकि इस सम्बन्ध में 70 के दशक से ही घोषणाएें की जाती रही हैं। इसलिये बुडापेस्ट, मॉस्को आदि पेरिस की गलियों में अर्थशास्त्र की उन पुस्तकों को नष्ट किया गया - जिनके माध्यम से पिछले 75 वर्षों तक युवा पीढ़ी को 'साम्यवादी विचारधारा' की शिक्षा दी जाती रही थी। मार्क्सवाद की यह एक बड़ी हार थी। सोवियत साम्राज्य और मार्क्सवादी विचारधारा के इस पतन को यूरोप के पूंजीवादी देशों ने अपनी विजय माना और पूरी दुनिया को यह संदेश देने का प्रयत्न किया कि यह उनकी विचार धारा - 'पूंजीवादी विचारधारा' की विजय है। खुले बाजार के उन्मुक्त उपभोक्तावाद को दुनिया पर लादने का उनका यह प्रयत्न इसी मानसिकता का परिणाम है। जबकि ऐसा नहीं है। स्वयं पश्चिम के आर्थिक विचारक और दार्शनिक यह घोषणा कर रहे हैं कि पूंजीवाद का यह सूरज, यदि हम बहुत उदारता से गणना करें तो 2015 से 2025 के बीच अस्त हो जाएगा। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री शूम्पटर से किसी ने पूछा था - '''क्या पूंजीवाद जिंदा रहेगा?'' तो उनका उत्तर था - 'नहीं', वह जीवित नहीं रह सकेगा।[3] क्योंकि पूंजीवाद के पतन के बीज स्वयं उस व्यवस्था में ही निहित हैं।

इसलिये आज पूरी दुनिया में एक 'वैचारिक शून्यता' विद्यमान है और हर तरफ नये विकल्प - पर्यावरण, प्रकृति और मनुष्य को बचाने के ढूँढे जा रहे हैं। हिन्दू और जैन अर्थशास्त्र उसी दिशा में बढ़ाया गया एक छोटा सा कदम है जिस पर बिना किसी वैचारिक पूर्वाग्रह के विचार होना चाहिए।

हिन्दू और जैन अर्थ चिंतन कोई नया नहीं है - वरन् अनादि काल से भारत में जो सांस्कृतिक धारा बह रही है, जो 1200 वर्षों की गुलामी के काल क्रम में भी नहीं टूटी और जिसमें वेद, पुराण, उपनिषद, याज्ञवल्क्य नीति, विदुर नीति, जैन आगम, रामायण, महाभारत इत्यादि अनुपम ग्रन्थ सृजित हुए हैं - उनमें अर्थ चिंतन के सूत्र बिखरे पड़े हैं वही हमारे भारतीय अर्थशास्त्र का आधार हैं।

अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में जब अर्थशास्त्र की अनेक पुस्तकें देखी तो यह प्रश्न जहन से उभरा कि अर्थशास्त्र की भारतीय अवधारणा क्या है? क्योंकि पुस्तकों में तो यूरोपीय अर्थशास्त्रियों की परिभाषाऐं उपलब्ध थीं - जो या तो मार्क्स से प्रभावित थीं या फिर पूंजीवाद से। तब हमने अर्थशास्त्र को भारतीय दृष्टि से परखने का प्रयत्न किया और यह पाया कि पश्चिमी अर्थशास्त्र 'अभाव' पर आधारित है और इसलिए 'लाभ' ही उसका प्राण तत्व है, जबकि भारतीय अर्थशास्त्र 'बाहुल्यता' पर आधारित है और सबकी समृद्धि उसका प्राण तत्व हैं, इसलिये हमने कहा कि पश्चिमी अर्थशास्त्र 'अभाव' पर आधारित है, जबकि भारतीय अर्थशास्त्र 'बाहुल्यता' पर। और यह बाहुल्यता हमने समग्र मानवता के लिए चाही है। वेदों की अनेक ऋचाओं में प्रार्थना की गई है और जैन आगमों में ऐसे उल्लेख आते हैं - जिसमें कहा गया है कि हमें भी समृद्धि दो और अन्य लोगों को भी समृद्धि दो।

महावीर जब अपरिग्रह की बात करते हैं, तो वे विकास विरोधी नहीं है, वे 'सम्यक्त्व' की बात करते हैं, उन्होंने कहा भी है कि इच्छाएं अनन्त आकाश की तरह है। उनमें सम्यक् दृष्टि लाई जानी चाहिये।

1987 में होनोलूलू में 'बौद्ध परिप्रेक्ष्य में शान्ति' विषय पर एक संगोष्ठी हुई जिसमें यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि बुद्ध ने अपरिग्रह पर कुछ कहा हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। इस पर प्रश्न उठा कि जैन चिंतन में इस पर क्या कहा गया है? उत्तर में कहा गया कि महावीर ने अपरिग्रह पर इतना कुछ कहा है, जिसका कोई जवाब नहीं। महावीर ने कहा -

'असंविभागी न हु, तस्स मोक्खो।

इसका अर्थ है कि जो धन का संविभाग नहीं करता वह मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता। अपरिग्रह के सम्बन्ध में इससे ऊँचा वक्तव्य इतिहास में उपलब्ध नहीं है।

हिन्दू और जैन चिंतन में जीवन को देखने की एक समग्र दृष्टि रही है, हमने जीवन को टुकड़ों में नहीं बांटा, हमारे यहाँ कहा गया है कि जीवन - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समुच्चय है। महावीर ने भी कहा - काम कामे (काम) अर्थ लोलुए (अर्थ), धम्मसद्धा (धर्म) और संवेग (मुक्ति) यह भारत की समन्वित दृष्टि है।

हिन्दू और जैन अर्थशास्त्र 'बाहुल्यता' का अर्थशास्त्र है, (Hindu and Jaina Economics is the Economics of Abundance) यह हिन्दू और जैन आर्थिक चिंतन का सारतत्व है, किन्तु सबके लिए समृद्धि और बाहुल्यता आएगी कैसे?

सबके लिए बाहुल्यता और समृद्धि आएगी सही अर्थों में स्वतंत्र प्रतिस्पर्द्धा से। आज

दुनिया में कहीं भी पूर्ण और स्वतंत्र प्रतिस्पर्द्धा विद्यमान नहीं है यूरोप और अमेरिका में जो स्वयं को स्वतंत्र प्रतिस्पर्द्धी अर्थव्यवस्था का नेतृत्वकर्ता राष्ट्र मानते हैं - वे भी सही अर्थों में एकाधिकारवादी अर्थव्यवस्थाऐं हैं। यद्यपि दुनिया में पूर्णस्पर्द्धा (Free Competition) अपूर्ण स्पर्द्धा (Incomplete Competition) और एकाधिकार (Monopoly) पर हजारों पुस्तकें लिखी गई है, पर अभी तक विश्व में कहीं भी अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा विद्यमान नहीं है। बर्नार्ड शॉ और सेम्युलसन ने 1854-55 में ब्रिटिश पार्लियामेंट में जब कंपनी अधिनियम पर चर्चा हो रही थी - तब रॉबिन्स और हेयक ने इसे एकाधिकारवादी कदम बताया था।

पेटेन्ट्स, कॉपी राइट, बौद्धिक सम्पदा कानून ये सब एकाधिकारवादी कदम हैं। खाद्यान्न, दूध और मक्खन की विपुलता अथवा मूल्यों में लगभग समानता तभी तक है जब तक इनका पेटेन्ट या ट्रेड मार्क नहीं है। आप गेहूँ का ट्रेडमार्क पंजीयन करा लें, उसका मूल्य बढ़ जाएगा।

इसलिये भयानक मूल्य वृद्धि ने पूंजीवाद के इतिहास को लिखा है। पिछले 3000 वर्षों का इतिहास लगातार मूल्य वृद्धि का इतिहास रहा है। इसलिये हिन्दू और जैन चिंतन पर आधारित अर्थव्यवस्था 'मूल्यों को गिराने वाली अर्थ व्यवस्था' रहेगी।

प्राचीन भारत में जैन राजाओं के शासन काल में सही अर्थों में 'स्वतंत्र स्पर्द्धा' विद्यमान थी। इसलिये समृद्धि चारों और फैली हुई थी - यहाँ तक कि जैन व्यापारी राजाओं को ऋण दिया करते थे और अपने सार्थवाहों में स्वयं की पूंजी लगाकर लोगों को व्यापार के लिए विदेश ले जाते थे। इसलिये 'शुद्ध स्पर्द्धा' समृद्धि की वाहक है।

दूसरे समृद्ध, विकासशील और गरीब देशों की एक विकराल समस्या 'बेरोजगारी' है, जैन और हिन्दू अर्थ चिंतन में इसका समाधान क्या है? तो इसका उत्तर है 'स्व नियोजन' (Self-Employment) यद्यपि मार्क्स और कीन्स ने स्व-नियोजन में लगे लोगों को अर्थशास्त्र के अध्ययन की परिधि में नहीं लिया है किन्तु 'स्व-नियोजन', जीवन निर्वाह के ध्येय से अपनाया जाता है - 'लाभ' उसका एक मात्र ध्येय नहीं है - इसलिये बेकारी निवारण का वह अचूक साधन बन सकता है और सभ्य सरकारें इसके लिये बाजार में ब्याज रहित ऋण का प्रावधान कर सकती हैं, 'सबको काम - सबका नियोजन' हमारा ध्येय वाक्य होगा।

सही अर्थों में महावीर के अर्थशास्त्र में भौतिकवाद और आध्यात्मिकता का गजब का समन्वय है, इस दिशा में इतिहास की खोज और चिंतन का उन्मेष समय की बहुत बड़ी आवश्यकता है। इस दिशा में बढ़ाया गया कदम कुछ नये क्षितिजों की खोज कर सकता है। आइये, इस ओर हम अपने कदम बढ़ायें।

सन्दर्भ -

1. महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, संपादक मुनि धनंजय कुमार, आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन, चुरू, प्रथम संस्करण, 1994, पृष्ठ 126।
2. हिन्दू अर्थशास्त्र, प्रो. उदय जैन, 'प्रस्तावना' डॉ. मुरली मनोहर जोशी, अर्चना प्रकाशन, बी-17, दीनदयाल परिसर, ई-2, महावीरनगर, भोपाल, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 4
3. 'हिन्दू अर्थशास्त्र', प्रो. उदय जैन, पृष्ठ 24

प्राप्त - 20.8.99

वर्ष - 12, अंक - 1, जनवरी 2000, 43 - 46

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन गणित के उद्धारक : डॉ. हीरालाल जैन

■ अनुपम जैन *

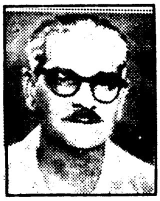

डॉ. हीरालाल जैन, जन्म शताब्दी वर्ष में उनके द्वारा की गई जिनवाणी की अमूल्य सेवाओं के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप जैन गणित के उद्धार में दिये गये उनके महनीय योगदान को प्रस्तुत आलेख में रेखांकित किया गया है। — **सम्पादक**

जैन साहित्य जगत के देदीप्यमान नक्षत्र **डॉ. हीरालाल जैन** का जन्म म.प्र. के गाडरवाड़ा जिले के गोंगई ग्राम में 18 सितम्बर 1899 को हुआ था। आप श्री बालचन्द जैन एवं भुतरोबाई दम्पति की सन्तानों में से तीसरे क्रम पर थे।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम गोंगई की पाठशाला, उपरान्त गाडरवाड़ा के मिडिल स्कूल तथा जिला नरसिंहपुर के मिशनरी हाईस्कूल में हुई। 15 वर्ष की आयु में आपका विवाह गोटेगाँव के श्री जवाहरलाल जैन की पुत्री श्रीमती सोनाबाई से हो गया। आपने 1920 में बी.ए. की परीक्षा एवं 1922 में एम.ए. (संस्कृत) तथा एल.एल.बी. परीक्षा एक साथ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उ.प्र. सरकार द्वारा प्राप्त अनुसंधान मूलक छात्रवृत्ति के साथ आपने 1922 - 1925 के मध्य जैन साहित्य एवं इतिहास का विशेष अध्ययन किया। आपने इन्दौर के न्यायाधिपति श्री जे. एल. जैनी की गोम्मटसार के अंग्रेजी अनुवाद में सहायता की किन्तु सर सेठ हुकमचन्दजी के उनके पुत्र श्री राजकुमारसिंह कासलीवाल के शिक्षक के रूप में रु. 500/- प्रतिमाह के यावज्जीवन वृत्ति के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। तदुपरान्त आप किंग एडवर्ड कालेज, अमरावती (विदर्भ - महाराष्ट्र) में संस्कृत के सहायक प्राध्यापक बनकर 1925 से संस्कृत, प्राकृत की सेवा करने लगे। आपकी 5 पुत्रियाँ एवं 1 पुत्र के रूप में कुल 6 सन्तानें थी। जिनमें प्रो. प्रफुल्लकुमार मोदी (पूर्व कुलपति - सागर वि.वि.) का नाम सम्मिलित है।

डॉ. जैन 1954 में इस पद से सेवानिवृत्त हुए। 1955 में डॉ. जैन ने बिहार सरकार के आमंत्रण पर जैन धर्म तथा प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के अध्ययन हेतु वैशाली (बसाढ़) में एक शोध केन्द्र की स्थापना की जिसके आप 7 - 8 वर्ष निदेशक रहे। यह संस्थान कालान्तर में अनेक ख्यातनाम विद्वानों का शोध केन्द्र रहा।

1961 में जबलपुर वि.वि. के आमंत्रण पर आपने वैशाली के संस्थान से नाता तोड़कर गृह क्षेत्र में उपस्थित जबलपुर वि.वि. में शोध मार्गदर्शन तथा एम.ए. (संस्कृत) की कक्षाओं में अध्यापन प्रारम्भ किया। इस वि.वि. से वे 1969 तक सम्बद्ध रहे। अनेक शारीरिक रुग्णताओं के बावजूद वे यावत् जीवन प्राकृत, अपभ्रंश की सेवा करते रहे। अंत में 13 मार्च 1973 को इस ज्योतिपुंज का अवसान हुआ।

उनके कृतित्व का अब तक सम्यक मूल्यांकन न हो सका किन्तु जो कुछ भी प्रकाशित है उसकी सूची भी बहुत लम्बी है।[1]

16 खण्डों में प्रकाशित षट्खण्डागम एवं उसकी धवला टीका जैन दर्शन का आधारभूत

* गणित विभाग - शासकीय स्वशासी होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर। सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584 महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001

ग्रंथ है। विश्व अकादमिक समुदाय को आपने इस षट्खण्डागम सहित 27 ग्रन्थों एवं लगभग 14000 पृष्ठों की जो सामग्री उपलब्ध कराई है उसमें से मैं केवल एक विषय का स्पर्श कर रहा हूँ। गणित का विद्यार्थी होने के नाते यह मेरे लिये अधिक सरल, सहज और समीचीन भी है कि मैं जैन गणित के विकास, उद्धार एवं अध्ययन के क्षेत्र में डॉ. हीरालाल जैन के अवदान की ओर विद्वत् समुदाय का ध्यान आकर्षित करूँ।

यह सत्य है कि बहुत समय तक लोग जैन धर्म को हिन्दू समाज की ही शाखा मानते थे। इस कारण जैन गणित को अलग से मान्यता नहीं मिली किन्तु यह भी सत्य है कि विशुद्ध रूप से जैन गणित की कोई कृति सर्वप्रथम 1908 में David Eugen Smith [2]द्वारा गणितसार संग्रह की पांडुलिपि प्राप्त होने की सूचना से पहले प्रकाश में नहीं आई थी। 1912 में प्रो. एम. रंगाचार्य द्वारा किये गये अंग्रेजी अनुवाद तथा उन्हीं के द्वारा सम्पादित गणितसार संग्रह का मद्रास गवर्नमेन्ट द्वारा प्रकाशन किया गया।[3] लेकिन उसके बाद जैनाचार्यों द्वारा गणित के विकास में दिये गये योगदान को प्रकाश में लाने का काम अवरूद्ध हो गया। कलकत्ता वि.वि. के प्राध्यापक प्रो. विभूतिभूषण दत्त, जो बाद में हिन्दू परम्परा में दीक्षित होकर मुख्यत: अजमेर के समीप पुष्कर तीर्थ में स्वामी विद्यारण्य[4] बनकर (1933 - 1958) रहे थे, ने हिन्दू गणित शास्त्र के इतिहास के लेखनक्रम में लिखे गये आलेख The Jaina School of Mathematics[5] में उत्तराध्ययन सूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र, स्थानांग सूत्र, त्रिलोकसार आदि ग्रंथों को आधार बनाया। डॉ. हीरालाल जैन ने सर्वप्रथम लखनऊ वि.वि. के प्राध्यापक एवं गणित विभागाध्यक्ष प्रो. अवधेशनारायण सिंह को धवला पुस्तक - 3 (द्रव्यप्रमाणानुगम) में निहित गणित का विशेष अध्ययन करने की प्रेरणा दी और उसी के प्रतिफल के रूप में Mathematics of Dhavala लेख प्रकाश में आया।[6] यह लेख धवला पुस्तक - 4 तथा इसका हिन्दी अनुवाद धवला पुस्तक - 5 में प्रकाशित हुआ है। डॉ. हीरालाल जैन के ही प्रयासों का प्रतिफल था कि प्रो. ए. एन. सिंह जैसे चोटी के गणितज्ञ द्वारा लिखित 'भारतीय गणित इतिहास के जैन स्रोत'[7] शीर्षक आलेख प्रकाश में आया। 1945 में तिलोयपण्णति का प्रकाशन[8] भी जैन धर्म एवं साहित्य की एक विशिष्ट घटना है। डॉ. जैन ने उन दिनों नागपुर / जबलपुर में कार्यरत जैन गणित के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो. लक्ष्मीचन्द जैन को तिलोयपण्णति के दो भागों में निहित गणित के अध्ययन की प्रेरणा दी और तिलोयपण्णति का गणित शीर्षक 104 पृष्ठीय विस्तृत आलेख, जो जम्बूदीवपण्णतिसंगहो (1958) ग्रंथ के साथ प्रकाशित हुआ,[9] लिखा गया। लगभग 1952 में प्रो. हीरालाल जैन ने प्रो. लक्ष्मीचन्द जैन को विगत अनेक वर्षों से अनुपलब्ध आचार्य महावीर (850 ई.) कृत गणितसार संग्रह के हिन्दी अनुवाद की प्रेरणा दी। आज प्रो. लक्ष्मीचन्द जैन की लेखनी से हमें जैन गणित से सम्बद्ध लगभग सौ आलेख प्राप्त हुए हैं जो देश - विदेश के पत्र - पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं[10] लेकिन प्रयुक्त गणित (Applied Mathematics) के इस विद्वान को जैन गणित के अध्ययन की ओर उन्मुख करने का श्रेय यदि किसी को जाता है तो निर्विवाद रूप से डॉ. हीरालाल जैन को जाता है। शायद यदि डॉ. जैन, प्रो. बी. बी. दत्त एवं प्रो. एल. सी. जैन को जैन गणित के अध्ययन की ओर प्रवृत्त न करते तो जैन गणित के नाम पर हमें केवल स्थानांग सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य, जैसे श्वेताम्बर परम्परा के ग्रंथों में निहित गणित ही प्राप्त होता एवं दिगम्बर जैन परम्परा के प्राचीन आगम ग्रंथों में लोक के स्वरूप के विवेचन तथा कर्म सिद्धान्त की व्याख्या में सरल, सहज रूप में आये उत्कृष्ट गणित से आज के गणित इतिहासज्ञ वंचित रह जाते। डॉ.

हीरालाल जैन की यह भावना थी कि विशाल जैन साहित्य में निहित वैज्ञानिक तथ्यों को विषय के अधिकारी विद्वानों के माध्यम से प्रकाश में लाया जाना चाहिये। भारत के राष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा (तत्कालीन शिक्षा मंत्री, म.प्र.) की अध्यक्षता में दिये गये डॉ. हीरालाल जैन के 4 व्याख्यानों (7, 8, 9, 10 मार्च 1960) का संवर्धित रूप 'भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान' शीर्षक पुस्तक में प्रकाशित है।[11] इस पुस्तक में पृ. 93 से 98 के मध्य करणानुयोग विषयक साहित्य का विवेचन करते हुए आपने अनेक ऐसे ग्रंथों का विस्तार से परिचय दिया है जिसमें गणितज्ञों की रूचि की विपुल सामग्री निहित है। गणितीय साहित्य में डॉ. जैन की विशिष्ट अभिरूचि का प्रमाण 'जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा)' में प्रकाशित आपका आलेख 'आठवीं शताब्दी से पूर्ववर्ती गणित शास्त्र संबंधी संस्कृत एवं प्राकृत ग्रंथों की खोज'[12] है। मुझे यह कहते हुए अफसोस है कि आज इस लेख के प्रकाशन के 58 वर्षों बाद भी हम वहीं खड़े हैं। जिन अनुपलब्ध ग्रंथों की चर्चा डॉ. हीरालाल जैन ने 1941 में की थी उनमें से एक भी हम ढूंढ़ नहीं पाये। मैंने 1980 में दिल्ली वि.वि. में दिये गये अपने व्याख्यान में डॉ. जैन द्वारा इंगित तथा विशाल जैन वाङ्मय में जिनके सन्दर्भ मिलते हैं ऐसे अनेकानेक ग्रंथों का हवाला दिया था, जिनकी खोज बहुत आवश्यक है। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के सहयोग से 'जैन साहित्य के सूचीकरण की परियोजना' का कार्य चल रहा है। मुझे कई ऐसी पांडुलिपियों की जानकारी इस कार्य की श्रृंखला में प्राप्त हुई हैं जिनसे गणित इतिहास की गुत्थियों के सुलझने की आशा है। महान दिगम्बर जैनाचार्य श्रीधर को जैनेतर सिद्ध कर 60 वर्ष तक जिनकी उपेक्षा होती रहे, आज उनका 'गणितसार (त्रिशतिका)' मूल स्वरूप में शीघ्र ही प्रकाश में आने वाला है। मैं सिर्फ इतना कहना चाहूँगा कि आज विश्व क्षितिज पर जैनाचार्यों के उत्कृष्ट गणितीय अवदान की यदि चर्चा है तो उसके मूल में डॉ. हीरालाल जैन की व्यापक दूरदृष्टि और सतत् सार्थक प्रेरणा रही है और उनकी भावनाओं को विकसित करने में जो सहभागी रहे हैं उनमें स्वर्गीय प्रो. ए.एन. सिंह - लखनऊ, डॉ. नेमीचन्द जैन शास्त्री - आरा, प्रो. लक्ष्मीचन्द जैन - जबलपुर, प्रो. राधाचरण गुप्त - रांची का अमूल्य योगदान है। जन्मशताब्दी वर्ष में डॉ. हीरालाल जैन के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम जैन गणित के क्षेत्र में अब तक प्रकाशित शताधिक श्रेष्ठ शोध पत्रों को संकलित कर गणित के विकास में जैनाचार्यों के योगदान को सम्यक रूप से रेखांकित करने वाले एक ग्रंथ का सृजन एवं प्रकाशन करें।

सन्दर्भ स्थल -

1. प्रफुल्ल कुमार मोदी, डॉ. हीरालाल जैन व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर, 1999
2. Smith, D.E., Gaṇita Sāra Saṁgraha of Mahāvīrācārya, B.M. (Leipzing), **3**, 106-110, 1908
3. महावीराचार्य, गणितसार संग्रह, अंग्रेजी अनुवाद सहित सम्पादित, एम. रंगाचार्य, मद्रास सरकार, मद्रास, 1912

   — गणितसार संग्रह, हिन्दी अनुवाद सहित सम्पादित, लक्ष्मीचन्द्र जैन, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, 1963

   — गणितसार संग्रह, हिन्दी, अंग्रेजी एवं कन्नड़ अनुवाद सहित प्रकाशित, कन्नड़ अनुवादक - प्रो. पद्मावथम्मा (मैसूर), मुद्रणाधीन
4. Dutt, Sukomal, Bibhuti Bhushan Dutt or Svāmi Vidyāraṇya, Gaṇita Bhārtī (Delhi), **10** (1-4), 3-15, 1980
5. Dutt,B.B., The Jaina School of Mathematics, B.C.M.S. (Calcutta), **21**, 115-143,

1929
महावीराचार्य एवं नेमिचन्द्राचार्य के गणितीय अवदान पर भी आपने लेख लिखे हैं। विस्तृत विवरण हेतु देखें : A Brief Survey of Work done on Jaina Mathematics, by A. Jain, Tulsīprajñā, Ladnun, II (1-3), PP 15-27, 1983

6. Singh, A.N., Mathematics of Dhavalā, Dhavalā Book IV, Amravati, 1941
धवला का गणित, धवला पुस्तक - 5 के साथ प्रकाशित, अमरावती, 1945

7. Singh, A.N., History of Mathematics in India from Jaina Sources, The Jaina Antiquary (Arrah), **15** (II) 46-53, 1949, **16** (II) 55-69, 1950

8. यतिवृषभ (आचार्य), तिलोयपण्णत्ती भाग - 2, संपादक - डॉ.हीरालाल जैन, आ. ने. उपाध्ये, सोलापुर, 1948, 1953, आर्यिका विशुद्धमती कृत टीका सहित, कोटा, भाग 1 - 3, 1984 - 1988

9. लक्ष्मीचन्द्र जैन, तिलोयपण्णत्ती का गणित, अन्तर्गत जम्बुद्दीवपण्णत्तिसंग्रहो, सोलापुर, 1958

10. See Bio-data of Prof. L.C. Jain attached with the 'Tao of Jaina Sciences', Arihant International, Delhi, 1992, XVII-XXIV, यह सूची 1992 तक की है। अब यह सूची 100 का आंकड़ाँ स्पर्श कर रही है।

11. डॉ. हीरालाल जैन, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, म. प्र. शासन साहित्य परिषद, भोपाल, 1962

12. डॉ. हीरालाल जैन, 'आठवीं ताब्दी से पूर्ववर्ती गणित सम्बन्धी संस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थों की खोज', जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा), **8**, पृ. 105 - 111, 1941

13. अनुपम जैन, 'कतिपय अज्ञात जैन गणित ग्रन्थ', गणित भारती, दिल्ली, **4** (1 - 2), पृ. 61 - 71, 1981
जैन गणितीय साहित्य, अर्हत् वचन (इन्दौर), **1** (1), पृ. 19 - 40, 1988
प्राकृत भाषा में निबद्ध गणितीय ग्रन्थ, तुलसी प्रज्ञा, **26**, जुलाई - सितम्बर 1999, पृ. 35 - 43

प्राप्त - 22.11.99

A NEW EDITION OF

GAṆITASĀRA SAṀGRAHA OF ĀCĀRYA MAHĀVĪRA

An Ancient Jaina Mathematical Text in Sanskrit

In Three Languages

ENGLISH, HINDI AND KANNADA

Editor : Dr. Padmavatamma

Professor of Mathematics, University of Mysore, Mysore, India

Is Now Published Under the Patronage of

Rev. Devendrakirti Bhattāraka

For

Sri Siddhāntakirti Granthamālā

Jain Matha of Humcha, Hombuja - 577 436, Karnataka, India

वर्ष - 12, अंक - 1, जनवरी 2000, 47 - 51

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अन्य ग्रहों पर जीवन

■ हेमन्त कुमार जैन *

जीवन के लिए ऊर्जा का होना अत्यावश्यक है। और सूर्य ऊर्जा का प्रमुख प्राकृतिक स्रोत है। अत: जीवन का अस्तित्व सौरमंडलों में ही संभव है, हमारे सौरमंडल में सूर्य से विशिष्ठ दूरियाँ बनाये रखने के कारण विभिन्न ग्रहों के तापमान, वायुमंडल एवं पर्यावरण की भिन्नताएँ हैं, मानव एवं अन्य जीवों के लिए जो आवश्यकताएँ हैं, वे हमारी पृथ्वी पर सुलभ हैं। अन्य ग्रहों में ऐसे ही वातावरण होने पर जीवन संभव हो सकता है।

हमारे सौरमंडल के अतिरिक्त दूसरे सौर मंडलों की खोज में वैज्ञानिक कई वर्षों से संलग्न रहे हैं, कुछ ही दिनों पूर्व हमारे सौरमंडल के समीप ही एक अन्य सौरमंडल का पता चला है, यह सौरमंडल हमारी गैलेक्सी ''मंदाकिनी'' में दूधिया रंग की एक आकाश गंगा में है, उसमें कोई दौ सौ अरब तारे हैं, अमेरिका की सेन्फ्रान्सिसकों स्टेट युनिवर्सिटी के अनुसंधानकर्ताओं ने दिनांक 15 अप्रैल 99 को अपनी इस खोज के संबंध में घोषणा की। खगोल विशेषज्ञों को लगा कि पृथ्वी से 44 प्रकाश वर्ष दूरी पर एक ग्रह, ''एपसिलन एंडोमेट्री'' नामक तारामंडल के चारों ओर घूम रहा है, इसके पश्चात् सेंनजोंस के निकट वेधशाला में 107 तारों का 11 वर्ष तक अध्ययन करने के बाद दो अतिरिक्त ग्रहों को खोज निकाला गया जो अपने आप में सौर मंडल जैसे ही हैं। इनमें कई ग्रह और उपग्रह विद्यमान हैं।

वेदों में लिखा है,

एतेषु हीदऽसर्वं वसु हित मेते हीदऽसर्वं
वासयन्ते तद्यदिदऽसर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति॥

शत. कां. 14। अ. 6। ब्रा. 9। कं 5॥ सत्यार्थ प्रकाश: पृष्ठ 188

अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका वसु नाम इसलिए है कि इन्हीं में सर्व पदार्थ और प्रजा बसती है और ये ही सबको बसाते हैं, जब पृथ्वी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वस्तु हैं, तो उनमें उसी प्रकार की प्रजा होने में क्या संदेह है? और जब परमेश्वर का यह छोटा सा लोक अर्थात् पृथ्वी, मनुष्यादि सृष्टि से भरा है, तो क्या यह सब लोक शून्य होगा? परमेश्वर का कोई भी कार्य निष्प्रयोजन नहीं होता, तो इतने असंख्य लोकों में मनुष्यादि सृष्टि न हो, क्या ऐसा हो सकता है? इसलिए सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है।

विभिन्न लोकों में मनुष्यादि की आकृति में कुछ-कुछ भेद होना संभव है, जैसे कि चीन, अफ्रीका, अमेरिका, भारत आदि के मनुष्यों का रंग रूप और आकृति में भेद है, परन्तु जिस जाति के तथा अंगों के धारणा करने वाले मनुष्य यहाँ हैं, वैसे ही अन्य लोकों में भी हैं।

सूर्याचन्द्र मसौ: धाता यथापूर्वम कल्पयत्।
दिवंच पृथ्वीं चान्तारिक्ष मयो: स्व॥

ऋ. सं. 10। सू. 190। मं. 3॥ सत्यार्थ प्रकाश: पृष्ठ 189

अर्थात् - धाता (परमात्मा) ने जिस प्रकार के सूर्य, चन्द्र, द्यो, भूमि, अन्तरिक्ष और तत्रस्थ सुख, विशेष पदार्थ पूर्व कल्प में रचे थे, वैसे ही इस कल्प अर्थात् वर्तमान

* 729, किसान मार्ग, बरकत नगर, जयपुर

सृष्टि में भी रचे हैं तथा सब लोक लोकान्तरों में बनाये गये हैं, भेद किंचिन्मात्र भी नहीं होता।

हमारी पृथ्वी के अलावा अन्य ग्रहों में जीवन की संभावनाओं के बारे में समय-समय पर अटकलें लगाई जाती रही हैं, पर अभी तक यह एक रहस्य ही बना हुआ है, वैज्ञानिकों ने विशाल दूरबीनों तथा अन्य यंत्रों की सहायता से अधिकांश आकाश छान डाला, पर उन्हें अभी तक मानव का अस्तित्व अन्यत्र प्रकाश में नहीं आया।

हमारी पृथ्वी का ब्रह्माण्ड से तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि यह हमारे सौरमंडल का एक छोटा सा भाग है, जैसे घड़े में पानी की बूंद के बराबर। यह नौ ग्रह व उपग्रहों वाला सौरमंडल हमारी गैलेक्सी 'मंदाकिनी' में उसके केन्द्र से 25000 प्रकाशवर्ष दूर रहते हुए चारों ओर 220 किलोमीटर प्रति सैकन्ड की गति से चक्कर लगा रहा है और लगभग 27,00,00,000 (सत्ताइस करोड़) वर्षों में एक चक्कर लगा पाता है, इस तश्तरी जैसे आकार की गैलेक्सी का व्यास लगभग एक लाख प्रकाशवर्ष है, इसमें हमारे जैसे कई सौर मंडल होने की संभावना है, ब्रह्माण्ड में ऐसी गैलेक्सीज की संख्या लाखों में है, और नई-नई गैलेक्सीज का पता लगता जा रहा है, हमारे सबसे निकट वाली गैलेक्सी 'एन्ड्रोमिडा' हमसें 23 लाख प्रकाश वर्ष दूर है, वैज्ञानिकों की भाषा में ये गैलेक्सियाँ द्वीपों के समान हैं (Islands of Universe) और दूर से ऐसी लगती है मानों एक ही तारा चमक रहा हो, इस प्रकार यह आकाश अनंत द्वीप समूहों से भरा हुआ हैं, पर यह एक रहस्य बना हुआ है कि आखिर इन सबके आगे क्या है और इसकी सीमा कहाँ तक है? उपर्युक्त वर्णन से इस ब्रह्माण्ड की विशालता का पता चलता है तथा तुलनात्मक दृष्टि से हमारी पृथ्वी का तो इसमें एक रजकण के बराबर भी अस्तित्व नहीं है, फिर भी हम अपनी सीमित क्षमताओं, उपलब्धियों, साधनों, बुद्धिकौशल, संख्याबल, इतिहास, मान्यताओं एवं सिद्धांतों आदि का गर्व करके फूले नहीं समाते और दंभ के साथ यदि हम कहें कि हमारे जैसे मानव कहीं और नहीं हैं, तो यह केवल हमारी अज्ञानता ही होगी।

हमारे सूर्य का व्यास 30 लाख किलोमीटर के लगभग है, वहाँ से प्रतिमिनट 5.43 X 10^{27} कैलोरीज ऊर्जा निकल रही है, जो .37 X 10^{27} वाट के बराबर है, सूर्य की सतह का तापक्रम 6000°से. है, वहाँ हाइड्रोजन व हीलियम गैसें मुख्यत: हैं, सूर्य से हमारे जीवन का गहरा संबंध है, वह जीवनदाता है। वहाँ तो जीवन का भंडार होना चाहिए पर हाँ, हमारे जैसा मानव वहाँ नहीं हो सकता।

जैन शास्त्रों के अनुसार अग्नि में भी जीव होते हैं, उन्हें अग्निकायिक जीव कहते हैं, तथा तारामंडल एवं ग्रह नक्षत्रों में ज्योतिष जाति के देव रहते हैं, मनुष्य लोक में जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, घातकीखण्ड, कालोदधि एवं पुष्करार्ध शामिल हैं।

''जम्बूद्वीप लवणोद्वादय: शुभनामानो द्वीप समुद्रा:॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपपस्यनवति शत भाग:॥ द्विर्धातकी खण्डे॥ पुष्करार्द्धेच॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या:॥ आर्याम्लेच्छाश्च॥ भरतैरावत - विदेहा: कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तर कुरूभ्य:॥''

तत्वार्थ सूत्र तृतीयोध्याय।

''व्यंतराकिंन्नर किंपुरूष महोरग गंधर्व यक्ष राक्षस भूत पिशाचा:॥ ज्योतिष्का: सूर्या, चन्द्रमसौ ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक तारकाश्च॥ मेरूप्रदक्षिणा: नित्य गतयो नृलोके''॥ ''भवनेषु च॥ व्यन्तराणां च॥ ज्योतिष्काणां च॥ लोकान्तिनामष्टौ सागरोपमणि च सर्वेषाम्॥''

तत्वार्थ सूत्र चतुर्थोऽध्याय।

इन श्लोकों में मनुष्य ही नहीं, अपितु यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, व्यंतर व भवनवासी तथा लोकान्तिक देवों के स्थान, गमन की दिशाएँ तथा आयु आदि का भी वर्णन है।

नंदीश्वर द्वीप की दूरी यहाँ से 16384 लाख योजन है, यह आठवाँ द्वीप है यहाँ प्रत्येक चार माह बाद देव - देवी दर्शन के लिए जाते हैं।

'बिम्ब अठ एक सौ रतनमयि सोहही, देव देवी सरब नयन मन मोहहीं।
पाँचसै धनुष तन पद्म आसन परं, भौन बावन प्रतिमा नमो सुखकरं॥'

इसी तरह -

'लाल नख मुख नयन स्याम अरू स्वेत हैं, स्याम रंग भोंह सिरकेश छवि देत हैं।
वचन बोलत मनो हँसत कालुष हरं, भौन बावन प्रतिमा नमो सुखकरं॥''

नन्दीश्वर द्वीप पूजा

नंदीश्वर द्वीप इतना दूर होते हुए भी वहाँ सुन्दर मनुष्याकार में पूजनीय प्रतिमाएँ होना आश्चर्यजनक है।

वैज्ञानिकों द्वारा अंतरिक्ष में भेजे गये उपग्रह केवल इस सौरमंडल के ही कुछ उपग्रहों की टोह ले पाये हैं, ऊँचाई से हमारी पृथ्वी भी एक निर्जन, उबड़ - खाबड़ स्थान दिखाई देता है जो चित्र सैटेलाइट द्वारा पृथ्वी के प्राप्त हुए हैं, उनमें मानव निर्मित चीन की हजारों मील लंबी दीवार, विशाल एरोड्रोम, बड़े - बड़े बांध, लंबे - चौडे राजमार्ग, अट्टालिकाएँ आदि का तो पता ही नहीं चलता, हमारी पृथ्वी का औसत वार्षिक तापक्रम 15^{0} से. है जो मानव एवं पशु - पक्षी जैसे हाड़ - मांस निर्मित प्राणियों के लिये उपयुक्त है, इनके साथ ही वायुमंडल में विद्यमान 20.9 प्रतिशत आक्सीजन, पानी व अन्य गैसों व वनस्पतियों का भी महत्व है, यह सूर्य से लगभग 15 करोड़ किलोमीटर दूर होने से संभव हो पाया है। जीवन की सीमा रेखाएँ (Parameters) इतनी निर्णायक (Critical) एवं संवेदनशील है कि जरा सी दूरी कम ज्यादा होने से या धुरी के कोण में अंतर होने से मौसम बदल जाते हैं तथा प्राकृतिक प्रकोप शुरू हो जाते हैं, केवल सूर्य ही नहीं, अन्य छोटे - छोटे ग्रह, नक्षत्र व उपग्रह भी जीवन पर अपना पर्याप्त प्रभाव दिखाते हैं। 6 जनवरी 98 से चन्द्रमा की परिक्रमा करने वाले अमरीकी उपग्रह '''लूनर - प्रास्पैक्टर'' ने वहाँ के धरातल के नीचे बरफ के क्रिस्टल्स के रूप में पानी होने के संकेत दिये हैं। पर चंद्रमा में वायुमंडल बहुत कम है और आक्सीजन नहीं होने से मानव की उपस्थिति संदेहपूर्ण हैं।

बुध ग्रह जिसे मरकरी भी कहते हैं सूर्य से 6 करोड़ किलोमीटर दूर है, यहाँ एक दिन - रात पृथ्वी के 59 दिन - रात के बराबर होता है, यहाँ आक्सीजन, हाइड्रोजन प्रचुर मात्रा में है तथा कुछ मात्रा में हीलियम, एरगोन आदि गैसें हैं, यहाँ दिन में तापमान 345^{0} से. तथा रात में - 173^{0} से. हो जाता है।

ऐसी परिस्थिति में दिन में बड़े - बड़े पर्वत गल जाते हैं और रात को जम करके खण्ड - खण्ड हो जाते हैं, अर्थात् नारकीय जैसी स्थिति है। यद्यपि यह ग्रह पृथ्वी से छोटा है पर पृथ्वी से 6 गुनी अधिक ऊर्जा सूर्य से ग्रहण करता है, ऐसी स्थिति में मानव जैसे प्राणी के जीवित रहने की संभावना नहीं है।

शुक्र ग्रह (Venus) सूर्य से 12 करोड़ कि.मी. दूर है, वहाँ की धरती का तापक्रम 380^{0} सै. है तथा कार्बनडाई आक्साइड अधिक है, आक्सीजन 1 प्रतिशत है एवं वायु का दबाव पृथ्वी से 90 गुना अधिक है, वहाँ सदैव एक जैसा मौसम रहता है, धरातल पर चंद्रमा की भांति ज्वालामुखियों तथा उल्काओं द्वारा निर्मित खड्डे हैं, यह ग्रह चंद्रमा

की भांति कलाएँ भी बदलता रहता है, यहाँ की परिस्थितियाँ मानव जीवन के अनुकूल नहीं लगती।

मंगल ग्रह (MARS) सूर्य से लगभग 23 करोड़ कि.मी. दूर है, वहाँ का औसत तापक्रम 25° से. है। कारबनडाई आक्साइड की प्रधानता है, अधिकतम तापमान 20° से. न्यूनतम - 100° से. हो जाता है, आक्सीजन केवल .1% है, मंगल ग्रह की वैज्ञानिकों ने बहुत खोज की है। इस गुलाबी रंग की आभा वाले ग्रह पर अक्सर धूल भरी हवाएँ उड़ती रहती हैं। चंद्रमा के धरातल के समान यहाँ भी बड़ी संख्या में खड्डे (Craters) हैं। धरती ऊसर, उजाड एवं सूखी है। यहाँ के धरातल पर कुछ रेखाएँ दृष्टिगोचर होती हैं जो सूखी नदियाँ अथवा नहरें जैसी लगती हैं।

अभी हाल ही में मंगल ग्रह की परिक्रमा को भेजे गये मार्स ग्लोबल सर्वेयर(M.G.S.) ने पहली बार इसकी सतह का विस्तृत नक्शा तैयार किया है, जिससे इसके आकार, बर्फ की उपलब्धता एवं अन्य भौगोलिक स्थिति की स्पष्ट जानकारी मिलती है, गोडार्ड स्थित अमेरिकी अंतरिक्ष अनुसंधान एजेन्सी 'नासा' के स्पेस फ्लाइट सेंटर का कहना है कि इस नक्शे में मंगल की ध्रुवीय चोटियों, विस्तृत मैदानी भाग, विलुप्त ज्वालामुखियों एवं अन्य भौगोलिक संरचनाओं को अधिक स्पष्टता से चित्रित किया गया है, यह नक्शा लेसर किरणों द्वारा मात्र 13 मीटर के रिजोल्यूशन (Resolution) से तैयार किया गया है, नक्शे में मंगल पर बर्फ की उपलब्धता का भी अनुमान लगाया गया है, उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर करीब 40 लाख घन किलोमीटर बर्फ है, यह मात्रा पूरे मंगल ग्रह को 30 मीटर गहराई तक ढक सकती है, जब ध्रुवों पर गर्मी पाकर बर्फ पिघलती है, तब वहाँ की नहरों और नदियों में पिघला हुआ द्रव दिखाई देता है, और तभी वहाँ वनस्पति से ढका क्षेत्रफल बढ़ जाता है, हाल ही में मंगल ग्रह पर जीवाश्म (Fossils) होने का भी पता चला है, अनुमान है कि किसी समय में वहाँ जीवन का विकास हुआ होगा पर किसी कारणवश सब नष्ट हो गया।

मंगल ग्रह से ऊपर बृहस्पति ग्रह सूर्य से 80 करोड़ कि.मी. तथा शनि ग्रह 143 करोड़ कि.मी. दूर है। बृहस्पति का तापक्रम - 140° से. है पानी अथाह मात्रा में बर्फ के रूप में हैं तथा इसके उपग्रहों पर भी है, यहाँ 90% हाइड्रोजन व हीलियम गैसें है तथा शेष भाग अमोनिया व मीथेन है, शनि का तापक्रम - 155° से. है और बृहस्पति जैसी ही परिस्थितियाँ हैं, अतः मानव के होने की संभावना नहीं है, इनसे ऊपर के ग्रहों में सूर्य की ऊर्जा बहुत कम पहुँच पाती है, जो मानव के अनुकूल नहीं।

हमारे सौरमंडल के बाद दूसरा तारा 4.29 प्रकाशवर्ष दूर है इसकी चमक व आकार हमारे सूर्य जैसा है, सूर्य से 650 प्रकाश वर्षों के अंतराल में अभी तक लगभग 20 ऐसे तारों की जानकारी हुई है, इनमें राइगल (Rigal) नामक तारा सूर्य से 23000 गुणा अधिक चमकदार है, और वह 650 प्रकाश वर्ष दूर है। यदि सबसे निकट वाले 'एल्फा सैन्टौरी' को यहाँ से रेडियो सिंग्नल भेजा जावे तो वहां से उत्तर प्राप्त करने में लगभग साढे आठ वर्ष लग जायेंगे। रेडियो तरंग प्रकाश के साथ-साथ ही अर्थात् एक सेकन्ड में 3×10^8 मीटर चलती है इसी प्रकार सबसे निकट वाली गैलेक्सी एन्ड्रोमिडा जो 23 लाख प्रकाशवर्ष दूर है, वहाँ से रेडियो सिंग्नल का उत्तर प्राप्त करने में 23 X 2 अर्थात् 46,00,000 वर्ष लगेंगे, आज जो भी वह दिखाई दे रहा है वह दृश्य या संदेश 23 लाख वर्ष पुराना है।

वैज्ञानिकों के अनुसार बाहर के लोकों से विशेष प्रकार के रेडियो सिंग्नल बराबर

प्राप्त हो रहे हैं, ये सिग्नल विशाल रेडियो - दूरबीन द्वारा विशेष फ्रीक्वेंसी बैंड्स पर पल्सेज के रूप में प्राप्त होते हैं। भारत में भी कर्नाटक प्रदेश में ऐसा रेडियो टैलिस्कोप है। वैज्ञानिकों का मानना है कि पृथ्वी से बाहर विकसित सभ्यता यदि होगी तो वह अवश्य ही हाइड्रोजन परमाणु द्वारा उत्पन्न 21 सेन्टीमीटर की तरंग दैर्ध्य (Wave Length) का उपयोग करती होगी, क्योंकि अंतरिक्ष में इसका प्रवेश (Penetration) आसानी से हो सकता है। कई बार अति संवेदनशील (Sensitive) रेडियो रिसीवरों में ऐसे अजीब तरह के संदेश प्राप्त होते रहते हैं, पर इन संदेशों को हमारे लिए समझना कठिन है, जब तक कि भेजने वाले की भाषा, कोड आदि ज्ञात न हो, पारस्परिक संपर्क हुए बगैर ये समझना संभव नहीं है। वर्तमान में कॉस्मिक किरण से लेकर ब्रह्माण्ड किरण, एक्स किरण (X-Ray) फोटोन, मेंसोन आदि की खोज हुई है जो रेडियो तरंगों से भी अधिक तेज व सूक्ष्म हैं, पर ये सब मैटर - पुद्गल या जड़ पदार्थ हैं, अतः इनकी भी अपनी - अपनी सीमाएँ हैं, तथा मानव का ज्ञान भी इन्द्रिय जन्य ज्ञान होने से सीमित ही है।

इतने विशाल ब्रंह्माण्ड में कोई ऐसी शक्ति अवश्य होनी चाहिए, जो प्राकृतिक नियमानुसार समस्त संसार का संचालन अनंतकाल से करती आ रही है, यह शक्ति भूत, वर्त्तमान व भविष्य को युगपत अर्थात् एक साथ जानने वाली होगी, ऐसी महाशक्ति को, जो अतिसूक्ष्म निराकार, इन्द्रियातीत, निर्बाध एवं सर्वत्र व्याप्त है। मानव ने इसे ईश्वर, भगवान (GOD) अथवा अल्लाह नाम दिया है, उसके साथ तारतम्य स्थापित कर हम असीम और इन्द्रियातीत संपूर्ण ज्ञान को एक साथ जान सकते हैं ऐसी धारणा ज्ञानी जनों की है।

जैन मान्यतानुसार तीर्थंकरों को केवलज्ञान होने पर भूत, वर्तमान व भविष्य काल व तीनों लोकों का ज्ञान युगपत व सहज ही प्राप्त होता है। उन्हीं के माध्यम से साधना द्वारा समस्त चराचर प्राणी (अर्थात् मनुष्य, देव, नारकी और तिर्यंच) अपने जीवन की भूत व भविष्य की घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा अपने कर्मानुसार गंतव्य स्थान पर पहुँच सकते हैं, देह का ममत्व त्यागकर विशेष पुण्योदय से विदेह क्षेत्र में पहुँच सकते हैं तथा उससे भी आगे की साधना द्वारा ऐसे सिद्धक्षेत्र (मोक्ष) में पहुँच सकते हैं जहाँ केवल जानना और देखना ही शेष रहता है और उसी में जीव को परमानंद की प्राप्ति होती है, सांसारिक कार्यों और जन्म मरण के दुःख हमेशा के लिये छूट जाते हैं, देह के साथ रहकर तो हम केवल एक सीमित क्षेत्र में रहकर एक सीमित ज्ञान की ही प्राप्ति कर सकते हैं।

त्रिलोक संबंधी ज्ञान वैराग्यवर्धन के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि विशाल ब्रह्माण्ड का अवलोकन करने पर सांसारिक पदार्थ त्रणवत् महसूस होने लगते है, अतः आज इस बात की आवश्यकता है कि प्राचीन ग्रंथों में वर्णित त्रिलोक संबंधी जानकारी और आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों व अनुसंधानों का परस्पर समन्वय करने हेतु सुनियोजित अनुसंधानशालाओं का निर्माण हो, जिनमें शक्तिशाली दूरबीन आदि यंत्रों सहित प्राचीन ग्रंथ तथा नवीन खोजों संबंधी साहित्य भी हो, अनुसंधान करने वाले निष्ठावान वैज्ञानिक व विद्वतजन भी हों, और उन्हें समुचित सुविधाएँ प्रदान की जाँय, तभी प्राचीन व अर्वाचीन मान्यताओं का परस्पर, विरोधाभास यथा संभव दूर होगा और मानव समाज को नया प्रकाश उपलब्ध होगा, ऐसी मंगल कामना है।

प्राप्त - 23.6.98

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

सन्दर्भ ग्रन्थालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं, विशेषत: जैन विद्याओं, के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दाशमिक पद्धत्ति से वर्गीकृत किये गये इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ / शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। हम यहाँ जैन विद्याओं से सम्बद्ध विभिन्न विषयों पर होने वाली शोध के सन्दर्भ में समस्त सूचनाएँ अद्यतन उपलब्ध कराना चाहते हैं। इससे जैन विद्याओं के शोध में रूचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उसकी छाया प्रतियों / माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर नवीन पुस्तकालय भवन का निर्माण किया गया है। 31 दिसम्बर 1999 तक पुस्तकालय में 6850 महत्वपूर्ण ग्रन्थ एवं 1000 पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। जिसमें अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की फोटो प्रतियाँ सम्मिलित हैं ही। अब उपलब्ध पुस्तकों की समस्त जानकारी कम्प्यूटर पर भी उपलब्ध है। फलत: किसी भी पुस्तक को क्षण मात्र में ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारे पुस्तकालय में लगभग 300 पत्र - पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

आपसे अनुरोध है कि —

संस्थाओं से : 1. अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1 - 1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।

लेखकों से : 2. अपनी कृतियों (पुस्तकों / लेखों) की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।

3. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही अमर ग्रन्थालय के अन्तर्गत पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। सन्दर्भ ग्रन्थालय में प्राप्त होने वाली कृतियों का प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर दिये जायेंगे।

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर के सहयोग से संचालित प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की परियोजना भी यहीं संचालित होने के कारण पाठकों को बहुत सी सूचनाएँ यहाँ सहज उपलब्ध हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

31.12.99

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

वर्ष - 12, अंक - 1, जनवरी 2000, 53 - 60

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैनधर्मे आचारदृष्टि: *

■ संगीता मेहता **

आचार जीवन का मेरुदण्ड है। जैन धर्म में व्यक्तित्व के उत्तरोत्तर विकास की दृष्टि से श्रावक एवं श्रमणाचार संहिता का विधान है। जैनाचार संहिता वैज्ञानिक है। यह मानव को स्वस्थ तथा आचार विचारों को विकसित कर नि:श्रेयस का पथ प्रशस्त करती है। प्रस्तुत आलेख में इसी का विस्तृत विवेचन अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत वर्ष के सन्दर्भ में संस्कृत भाषा में किया गया है। — **सम्पादक**

आचारस्य महत्वम्

आचार: जीवनस्य मेरुदण्डोऽस्ति। श्रुतकेवलिभद्रबाहु वेदव्यास मनु प्रभृतिभिर्मनीषिभि: कथित: आचार: अङ्गानां सार:।[1] सर्वागमानामाचार: प्रथमं परिकल्प्यते।[2] आचार: प्रथमो धर्म:।[3] आचार: प्रभव: धर्म:।[4] तीर्थंकर महावीरस्य वाणी आचारांग सूत्रे निगदिता यथा -

अणाणाए एगे सोवट्ठाणा
आणाए एगे निरुवट्ठाणा
एतं तेमा होउ, एतं कुसलस्स दस्सणं।
आचारस्य माहात्म्यविषये वैदिकमहर्षिभि: कथितम् -
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिता: प्रजा:
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्।[5]
आचारात्प्राप्यते विद्या वर्धते आयु: कीर्तिश्च।[6]
आचारात्फलते धर्ममाचारात् फलते धनम्।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम्॥[7]

आचार शुद्धौ सत्त्वशुद्धि: सत्त्वशुद्धौ चित्तैकाग्रता तत: साक्षात्कार:। सर्वस्य तपोमूलमाचारं जगृहु: परम्।[8] अपि चोक्तं आचारहीनं न पुनन्ति वेदा:।[9] एतासामुक्तीनां सारो यत् जीवने आचार एव सर्वोपरि भवति। अत: आचार: मानवताया: श्रृङ्गारोऽस्ति।

जैनधर्मे आचार:

जैन धर्मे नि:श्रेयस: पंथा आचार एवास्ति। तीर्थंकरा: धर्म मार्गे प्रवर्त्य मानवाय शक्तिसमार्थ्यानुसारं आचरणाय चतुर्विधसंघस्य[10] व्यवस्थामकुर्वन्। व्यक्तित्वस्योत्तरोत्तर विकास दृष्ट्या संघ: श्रावकरूपेण श्रमणरूपेण च द्विविध: अस्ति। लिङ्गभेदेन शारीरिकक्षमताया: च आधारेण श्राविका आर्यिका च इति चतुर्विधमस्ति। एतेषां श्रावकश्राविकयोराचार: समानं भवति श्रमणार्यिकयोराचारश्च समानं भवति।

गुणदृष्ट्या श्रमणस्य मुने: वा स्थानं सर्वोपरि अस्ति। गृहं परित्यज्य दीक्षां धृत्वा मोक्षमार्गस्य साधक: 'श्रमण' इति कथ्यते। निर्बलताया अन्यकारणात् वा गृहे स्थित्वा पारिवारिक - सामाजिक - राष्ट्रीय दायित्वानि निर्वाहयित्वा मुक्तिं उद्दिश्य आराधनां य: करोति स: श्रावक: वर्तते। स्वसाधनया प्रेरितै: जैनाचार्य: श्रावकश्रमणाभ्यां च आचारसंहिताया: निर्माणं कृतम्। तद् श्रावकाचारश्रमणाचारयो: संज्ञया अभिहितम्। एषा आचारसंहिता मानवान् स्वस्थं, आचारविचारान् च विकासयित्वा नि:श्रेयस: पंथानं प्रशस्तम् करोति।

---

* दशम विश्व संस्कृत सम्मेलन, बैंगलोर में प्रस्तुत शोध पत्र।

** सहायक प्राध्यापिका - संस्कृत, शास. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर।

श्रावकशब्दस्य अभिप्रायः

चतुर्विधसंघस्य प्रथमश्रृंखला 'श्रावक:' अस्ति। उपासक: देशसंयमी अगारी च श्रावकस्यैव पर्यायाः सन्ति। श्रद्धात: वीतरागं अर्हद्देवं निर्ग्रन्थ गुरो: शास्त्रं च य: श्रृणोति स: श्रावकोऽस्ति। आ. विजयराजेन्द्र सूरीश्वररेण श्रावक शब्दस्य निरुक्ति: इत्थं कृता -

श्रन्ति पचन्ति तत्त्वार्थ श्रद्धानं नयन्ति इति 'श्रा:'
तथा वपन्ति गुणसप्त क्षेत्रेषु धन बीजानि निक्षिपन्ति इति 'वा:'
तथा किरन्ति क्लिष्ट कर्मराजो विक्षिपन्ति इति 'क:'
तत: कर्मधारये श्रावका इति भवंति।[11]

अपि च

श्रद्धालुतां श्राति श्रृणोति शासनं, दानं वपेदाशु वृणोतु दर्शनम्।
कृन्तत्यपुण्यानि करोति संयमं, तं श्रावकं प्राहुरमी विचक्षणाः॥[12]

रूचिसामर्थ्ययो: भिन्नताया: श्रावक: विविध विधिना साधनां करोति। एतस्या: आधार: श्रावक: पाक्षिक: नैष्ठिक: साधकश्च त्रिविध: मन्यन्तेबुधा:।

श्रावकाचार :

पाक्षिकश्रावक: जिनधर्मे आस्थां करोति, अहिंसाया: निर्वाहञ्च करोति।[13] मैत्री प्रमोद कारूण्य माध्यस्थभावनानामभिवृद्धि: पाक्षिकश्रावकस्य विशेषता अस्ति।[14] एष: श्रावकस्य प्रारम्भिकावस्था भवति। यथा कृषक: बीजवपनात् पूर्वं भूमिं नियोजयति तथैव आचारबीजवपनात् पूर्व गृहस्थ: श्रावक: अपि एता: प्रतिज्ञा: धारयति यथा अष्टमूलगुण धारणं, सप्तव्यसनत्यागं, पंचपापानां त्यागं, रात्रिभोजन त्यागं, जलगालनं, षडावश्यक कर्त्तव्यान् यथाशक्ति नित्य पालनम्।

मद्य - मांस - मधु पंचोदुम्बरफलानि च अष्टमूलगुणे परिगणितानि।[15] आ. समंतभद्र: पंचोदुम्बर फलानां अपेक्षया पंचाणुव्रतानि मन्यते।[16] वस्तुत: अष्टमूलगुणा: अन्या: प्रतिज्ञाश्च अहिंसायामेव समाहिता: भवंति। मद्यनिर्माण प्रकियायां अनन्तत्रसस्थावरजीवानां उत्पत्ति: भवति। अत: मद्यपानेन हिंसा भवति। शारीरिक मानसिक सामर्थ्यम् क्षीणम् असंयमितं च भवति। यस्मात् मदोन्मत्त स्वपरयो: भेद:, हिताहितस्य विवेके हीना च भवति। यस्मात् स: मातु:सुतायाश्च भेदं न जानाति। द्यूत - मांस - सुरा - वेश्या - परदाराभिलोभन - मृगयाचौर्यादि - सप्तव्यसनानां श्रृंखला क्रमश: वर्धते। फलत: हिंसानृतस्तेय कुशीलपरिगृहरूपाणां पंचपापानां प्रकृति: बलवती भवति। भक्ष्याभक्ष्यविवेकहीन पुरुषो मांसाहारं करोति। मांसं तु पक्वमपक्वं वा शुष्कं वा मृतपशोर्वा सद्य:धातपशोर्वा भवतु एतत्तु सर्वथा अभक्ष्यं, अनन्तजीवराशिसंयुतं, दुर्गन्धयुक्तमेव भवति।[17] शरीरसंरचनाया: दृष्ट्यापि मनुष्य: शाकाहार्येव भवति। मांसाहारेण तामसीवृत्तिं जनयति एष: शरीरे अशक्तिं उत्तेजनां च ददाति। एतस्मिन् कार्बोहाइड्रेडप्रभृति उर्जादायी तत्त्वमपि नास्ति। पाचनक्रियायां सहकारी फाईवरोऽपि नास्ति।[18] अयं शरीरे रक्तमयस्य कोलस्ट्रोलस्य मात्रां वर्द्धयति। हृदयाघात: संधिवात: रक्तचाप: केंसरप्रभृतीनाम् विविध व्याधीनां जनको भवति।[19] अपि च आ. कल्पेन पंडितप्रवर आशाधरेणोक्तं

संघानकं त्यजेत्सर्वं दधितक्रं द्यहोषितं।
कांजिक पुष्पितमपि मद्यव्रतमलोऽन्यथा।
चर्मस्थमंभ: स्नेहश्च हिंग्वसंदृतचर्म च।
सर्व च भोज्यं व्यापन्नं दोष: स्यादमिषव्रते।[20]

मांसत्यागस्य शाकाहारस्य श्रेष्ठतां च अस्माकमाचार्या: अतिप्राचीनकाले एव निर्देशितवन्त:।

अद्य देशविदेशानां धार्मिक सामाजिकार्थिक राजनैतिक पर्यावरणवेत्तार: महापुरुषा: वैज्ञानिका: अपि च शोधकार्यै: सप्रमाणं मुक्तकंठै: शाकाहारस्य माहात्म्यं स्वीकुर्वन्ति।[21]

मधु मधुमक्षिकाणां वमन: भवति। मधुनिर्माण प्रक्रियायां तासां समूहानां अंडानां नाश: भवति। मधु यथार्थत: त्रसजीवानां कलेवराणां पुञ्जं भवति। अत: हिंस्य: अभक्ष्य: च भवति। अस्य एकबिन्दुग्रहणात् सप्तग्रामदाह समं पापं भवति।[22]

गूलरवटप्लक्षकठूमरपिप्लादि पंचोदुम्बर फलेषु असंख्य जीवराशि: अस्ति य: प्रत्यक्ष: परिलक्षितोऽस्ति। अत: हिंस्य अभक्ष्य: च सन्ति फलान्येतानि।

हिंसानृतस्तेय कुशीलपरिग्रहाश्च पंचपापानि हिंसाया: भूतानि सन्ति। आत्मनि रागादि विकाराणां उत्पत्ति: हिंसा भवति। यथाहि अमृतचन्द्राचार्येणापि उक्तं -

अप्रादुर्भाव: खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्ति: हिंसेति जिनागमस्य संक्षेप:।।

एतद्दृष्ट्या अप्रियवचनानि हिंसायामेव गर्भितानि स्तेयकुशीलपरिग्रहेषु परवस्तु स्तेयस्य, ग्रहणस्य अधिकारस्य, परपीडनस्य च भाव: भवति। अत: हिसा भवति। अपि च हिंसकस्य हृदयेऽपि राग लोभक्लेशादि भावनानां उत्पत्ति: भवति या स्वहिंसा भवति। एतेषां पापानां समाधानं अहिंसासत्य - अस्तेय ब्रह्मचर्य - अपरिग्रह व्रतानां पालनमेवास्ति। सूक्ष्मदृष्ट्या अहिंसाया: परिपालनमेवास्ति।

रात्रिभोजनत्यागेऽपि अहिंसाया: विराटदृष्टि: वर्तते। रात्रिभोजने हिंसाया: संभावना अधिकं वर्तते। दिने सूर्यस्य नीललोहित किरणै: ऊष्मण: प्रभावेन च वायुमण्डलस्था: रोगोत्पादका:जीवाणव: म्रियन्ते निष्क्रियन्ते वा।[23] स्वास्थ्यदृष्ट्या सुश्रुतसंहितायां चरकसंहितायां आयुर्वेद विषयक ग्रंथेषु च भोजनान्ते शीघ्रं शयनं निषिद्धम्। मार्कण्डेयऋषिणोक्तं

अस्तंगते दिवानाथे आपो रूधिरमुच्यते।
अन्नं मांसं समं प्रोक्तं मार्कण्डेय महर्षिणा।।

अपि च महाभारते, मार्कण्डेयपुराणे, कूर्मपुराणे, धर्मशास्त्रीयग्रंथेषु पुराणेष्वपि रात्रिभोजनस्य निषेधं स्वीकृतमस्ति।[24]

वस्त्रगालित: जलपानं श्रावकेण कर्त्तव्म्।[25] गालितं तोयमप्युच्चै: सम्मूर्च्छति मुहूर्त्तत:।[26] अगालिते जले असंख्या: त्रसजीवा: सन्ति। ये जलेन सह उदरे प्रविश्य म्रियन्ते अथवा जीवित्वा वर्धन्ते। यस्मात् नेहरूआ, हैजा -मोतीझरा - अतिसार नेत्ररोग प्रभृतय: विविधा व्याधय: प्रसरन्ति।[27] जलगालनस्य अष्टचत्वारिंशत् कलोपरान्त तस्मिन् पुन: जीवोत्पत्ति: भवति। अत: जलगालनस्य पश्चात् जलं समुष्णीकृतं प्रासुकं करणीयम्। जैनाचारे क्रियाकोशनामकग्रंथे जलशुद्धे: तकनीकस्य विस्तृतं वैज्ञानिकं वर्णनमस्ति। अत: जीवसंरक्षण स्वास्थ्य संरक्षणयो: दृष्ट्या जलगालनमेव वरमस्ति। अष्टाङ्गासंग्रहेऽपि लिखितं घनवस्त्रपरिस्रावै: शुद्धजन्त्वभिरक्षणम्।

देवपूजा गुरूपासना स्वाध्यायसंयमतपदानानि चेति श्रावकस्य षडावश्यका:[28] कर्त्तव्या: सन्ति। देवपूजाया: सम्यग्दर्शनम् निर्मलं भवति। स्वाध्यायात् सम्यग्ज्ञानं विकसति। गुरूपासनासंयमतपोदानेभ्य: सम्यक्चारित्रे विशुद्धता आयाति। षडावश्यक कर्त्तव्यनां पालनाय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रानां संपोषणं संवर्धनं च भवति। आध्यात्मोन्मुखाय एतानि प्राथमिकसोपानानि सन्ति।

मुक्तिपथसोपानस्वरूपा एकादशप्रतिमाएँ -

पाक्षिकश्रावकस्य एतासां प्रतिज्ञानां पालनं यदा कोऽपि श्रावक: निष्ठापूर्वकं करोति तदा स **नैष्ठिक:श्रावक:** कथ्यते। जैनाचारे श्रावकस्य व्यक्तित्वविकासाय क्रमश: एकादश श्रेण्य: प्रतिमारूपेण

निर्दिष्टाः। यानि सोपानानि अपि कथ्यंते। येष्वारुह्य श्रावकः आत्मशुद्धेः वृद्धिं करोति। स निर्दोष - निरतिचाररूपेण व्रतान् पालयति। श्रावकाय मुक्तिपथस्य सोपान - स्वरूपा एकादश प्रतिमाः[29] इत्थं -

सम्यग्दर्शनस्य सुदृढाधारे अवस्थितः 'दर्शनप्रतिमां' धारयन् श्रावकः देवशास्त्रगुरोः वन्दनं करोति। सः सप्तव्यसनं त्यक्त्वा अष्टमूलगुणान् पालयित्वा दोषरहित सम्यग्दर्शनं धारयति। 'व्रतप्रतिमां' धारयन् श्रावकः अतिचाररहितं द्वादशव्रतान् पालयति। येषु पंचाणुव्रतानि त्रीणिगुणव्रतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि सन्ति। अणुव्रतानां प्रथमः 'अहिंसा' अस्ति। जैनाचारे अहिंसायाः क्षेत्रं अतिव्यापकं अस्ति। प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।[30] संकल्पात् कृतकारितमननात्योगत्रयस्य स्थूलहिंसायाः त्यागः अहिंसाणुव्रतः अस्ति।[31] रागादीनामुत्पत्तिः हिंसा अप्रादुर्भावश्चाहिंसा अस्ति।[32] हिंसाहिंसा भावेषु निर्भरा। कृषिकार्ये लग्नः जीवघातकुर्वन् कृषकः अहिंसकः भवति किन्तु धीवरः हिंसकः भवति। यतः कृषकस्य भावः अन्नोत्पादनं भवति तथा धीवरस्य भावः गृहेऽपि हिंसैव भवति। अतः कृषकः अहिंसकः धीवरः हिंसकश्च भवति।[33] आचार्य उमास्वामिनोक्तं -

प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।[34]

दौस्थ्यं प्रकर्मानुचितक्रियाकारिता, कर्त्तव्यहानिः
अजितेन्द्रियत्वं इति पंचविधत्वं प्रमत्तता।[35]

श्रावकेन चतुर्विध हिंसा सम्भाव्यन्ते आरम्भी उद्योगी विरोधी संकल्पी च। दैनिक कार्येषु आरम्भी हिंसा भवति, आजीविकार्थ उद्योगी हिंसा भवति। आत्मरक्षार्थ देशधर्मरक्षार्थ च विरोधी हिंसा भवति। गृहस्थान् त्रिविधहिंसा क्षम्या किन्तु संकल्पी हिंसा कदापि क्षम्या नास्ति। अतः सः संकल्पी हिंसां त्यजति किन्तु शेष हिंसाः स्वरूचिस्थितिविवेकानुसारं त्यजति।

प्रमादपरिस्थितिवशात् व्रतमर्यादायाः उल्लंघनं अतिचाराः अभिहिताः। प्रतिव्रतानां पञ्चपञ्चातिचाराः सन्ति।[36] अङ्गानि छेदनं भेदनं पीड़नं अतिभारारोपणं आहारवारणं च इति पंचाहिंसाणुव्रतस्य अतिचाराः सन्ति।

जैन संस्कृतिः पृथिव्यपतेजोवायुवनस्पतिषु जीवत्वं स्वीकरोति। वानस्पतिक जगत् अस्मान् न केवलं भोज्य सामग्रीं ददाति अपितु भूमि - वायु - ध्वनि प्रदूषणादपि रक्षति।[37] अहिंसायाः प्राणीजगत् - वनस्पतिजगतः संरक्षणं अस्माकं कर्त्तव्यमस्ति।

वाणी संयम हेतोः 'सत्याणुव्रतमस्ति'। असदभिधानमनृतम्[38] असत् चिन्तनं असद्भाषणं - असदाचरणं अपि असत्यमेवास्ति। असदेव सत् करणाय **सत्याणुव्रतस्य** विधानमस्ति। आचार्य समन्तभद्रेणोक्तं 'स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।[39] मानवस्य समस्त व्यवहारः वचनैः संचालितः। अतः गर्हित - सावद्य - अप्रियञ्च त्रिविधं असत्यवचनं त्याज्यम्। हित - मित - ग्राह्य - वचनं वदनीयम्।[40] परिवादरहोभ्याख्या - पैशुन्यं कूटलेखकरणं न्यासापहरणं च सत्याणुव्रतस्यातिचाराः सन्ति। सत्यव्रतपालनात् मनोवचनकर्मसु एकरूपता आयाति दुर्भावना च नश्यति। अतिचारान् दूरीकृत्य यदि सत्यपालनं भवेत् तर्हि शेयरघोटालाः हवाला - चाराकाण्डप्रभृति दुष्प्रकृतयः देशस्य मूलं चालयितुं न शक्नुवन्ति।

सम्प्रति लोभवशःमनुष्यः चौर्यकर्माणिरतः अभवत्। निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं वस्तु यः न हरति न च ददाति तत् अचौर्याणुव्रतमस्ति। चौरप्रयोग चौरार्था दानविलोपसदृशसन्मिभाः हीनाधिकविनिमान पञ्चास्तेये व्यतीपाताः। एतद्दृष्ट्या वनानां अवैधहननं, अभयारण्ये वन्यपशुनामाखेटः दूषित वायूत्सर्जक वाहनोपकरण प्रयोगाः, उत्कोचस्यादानप्रदानं च स्तेयकर्माणि सन्ति। यौतुकदाहप्रभृति कुकृत्यस्य मूले लोभवृत्तिः अनुचितरीत्या धनप्राप्त्यै कामनास्ति। एतदपि

चौर्यकर्म एवास्ति। अचौर्य व्रतपालनात् सामाजिकाधिकारस्य सुरक्षा भवति। व्यक्ते: समाजस्य राष्ट्रस्य च आर्थिक पर्यावरणम् शुद्धम् भवति।

मैथुनमब्रह्म।[42] समग्र दोषाणां पोषणं सद्गुणानां ह्रास: च इत: एव प्रारभ्यते एतस्मात् निवृत्यै: उपाय: ब्रह्मचर्य व्रतमस्ति। आत्मसाधनायां प्रवृत्ति: ब्रह्मचर्यमस्ति। एतस्मिन् ब्रह्मचर्येण साधनायात्राया: आरम्भ: मनुष्य: गृहस्थजीवनेन करोति। वंशपरम्पराया: पोषणाय गृहस्थ: स्वदारसंतोषव्रतरूपं मर्यादितं ब्रह्मचर्यं पालयति। समन्तभद्राचार्येणोक्तं 'स तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतैर्यत् सा- परदारनिवृत्ति: स्वदारसंतोषणामपि।'[43] स्त्रीणां कृते स्वपतिसंतोषव्रतमस्ति। आत्मनियमोऽयं व्रत:। अत: स्वपुरुषं स्वदारमपि व्रती अमर्यादितभोगात् स्वं नियंत्रितं करोति। अन्यविवाहाकरण अनङ्गक्रीडा विटत्व अतितृषा इत्वरिकागमनं चास्य पंचातिचारा: सन्ति।[44] बलात्कार जनसंख्यावृद्धि एड्स प्रभृति वैयक्तिक - समाजिक - शारीरिक व्याधीनामुपाय: एतत्व्रतमेवास्ति। एतत्व्रतं आचार शुद्धे: नैतिक साधना अस्ति विचार शुद्धे: स्वेच्छया स्वीकृत प्रतिज्ञा चास्ति।

अनर्थो हि कारणं परिग्रहस्य। मूर्च्छा परिग्रह:।[45] मूर्च्छाया: तात्पर्यं आसक्ति:। आसक्ति जड़ चेतन लघुदीर्घान्तर्बाह्य वस्तूनां प्रतिमोह: ममत्वमस्ति आसक्त्यैव च परिग्रह:। वस्तुधनधान्यादि परिग्रह: दशविध:।[46] लोभवशात् मनुष्य: परिग्रहसंचयं करोति। संचितपरिग्रहस्य रक्षार्थं स: हिंसानृतस्तेयकुशीलादि पापान् प्रति प्रवर्तते। आसक्ते: नियंत्रणं पदार्थानां सीमानिर्धारणं च परिग्रह परिमाणव्रतं अस्ति। अतिवाहनातिसंग्रह विस्मय लोभातिभारवहनानि इति पंच विक्षेपा:। एतद्व्रतं एकत: आवश्यकतां आकांक्षां च नियंत्रयति अपरत: अनावश्यक संग्रहस्य निग्रहोऽपि करोति। समृद्धजनै: आवश्यकताया: अधिकवस्तूनां त्याग: दानाय साधनहीनानां हिताय च कुर्यु: तर्हि समाजे आर्थिक विषमताया: निराकरणम् सम्भवति।

हिंसानृतस्तेयकुशीलपरिग्रहादि पापेभ्य: निवृत्ते: सामर्थ्यं अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहादि पंचाणुव्रतेषु एवास्ति। एते त्यागस्य प्राथमिक स्तम्भा: सन्ति अत: मूलगुणा: मूलव्रतानि वा कथ्यन्ते। एतेषां संपोषणसंरक्षणसंवर्धन हेतो: सप्तगुणव्रतशिक्षाव्रतानि च सन्ति। एते उत्तरगुणा: उत्तरव्रतानि वा कथ्यन्ते। गुणव्रता: अणुव्रतानां उपकारका: सन्ति:।[47]

मनुजस्याभिलाषा: अनन्ता: सन्ति। अत: स: कार्यव्यापारस्य विस्तारं देशे विदेशे करोति। तत: कार्यक्षेत्रस्य सीम्न: निर्धारणं आवश्यकं भवति। अत: जैनाचारे दिग्व्रतस्य विधानमस्ति। अस्य व्रतस्य साधक: श्रावक: सर्वासु दिशासु गमनागमनस्य मर्यादाया: निर्धारणं करोति।

दिग्व्रतस्य मर्यादान्तर्गते येभ्य: वस्तुभ्य: धर्म: यश: सुखं लाभ: च न लभ्यते, ते अनर्थका: सन्ति। तेषां त्याग एव वरमस्ति। इदमेव अनर्थदण्डव्रतम् अस्ति। पापोपदेश हिंसादानापध्यानदु:श्रुतिप्रमादचर्या: पंचानर्थदण्डव्रतानि सन्ति।

एकदैव सेवनयोग्यपदार्था: भोगा: कथ्यंते यथा भोजन गंध पुष्पादय:। पुन:पुनर्भोगयोग्यपदार्था: उपभोगा: कथ्यन्ते। एतेषां सीमानिर्धारणं भोगोपभोगपरिमाणव्रतमस्ति।[49] आचार्य उमास्वामिना एतद्व्रतं उपभोगपरिभोग परिमाण व्रतम् कथितम्।[50] एतद्व्रतं भोजनं कर्म च द्विविधं एतस्मात् व्रतात् भोज्यपदार्थानां मर्यादाया: लोलुपताया: नियंत्रणं भवति। व्यापारमर्यादाया: पापयुक्त कार्यव्यापाराणां त्याग: भवति।

अणुव्रतानि शिक्षया अभ्यासेन वा यानि महाव्रतानि प्रति नयन्ति तानि शिक्षाव्रतानि सन्ति। दिग्व्रतस्य मर्यादाया: प्रत्यहं प्रतिसंहारो देशावकाशिक शिक्षाव्रतम् स्यात्।[51]

समग्रपदार्थेषु तटस्थभाव: समभाव: एव जैनसाधनाया: लक्ष्यमस्ति। रागद्वेषाभ्यां वैषम्यभावा: जायन्ते। हृदये समभावविकासनाय सामायिक शिक्षाव्रतम् अस्ति। एतस्मिन् श्रावक: निर्धारित काले रागरहितमनसा प्रशमसंवेगादि ज्ञानलाभाय आत्मध्यानं करोति। आत्मिक गुणानां वृद्धि: धर्मभावपोषणाय

च प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतं अस्ति। अष्टम्यां चतुर्दश्यां वा विशिष्ट दिनेषु उपवासं ब्रह्मचर्यपालनं तत्त्वचिन्तनं ध्यानसाधनां स्वाध्यायं वैराग्येन साधुवृत्तिधारणं च अस्य व्रतस्य चर्या: सन्ति। शुद्धभावात् न्यायोपार्जिताहारादि सामग्री सुपात्राय दानं मुनिभ्यश्च विधिनाहारौषधोपकरणप्रतिश्रयाणां दानं अतिथिसंविभागव्रतमस्ति। संग्रहवृत्ते: क्षयाय त्यागवृत्ते: प्रकाशाय विकासाय च एतद्व्रतमस्ति।

इत्थं द्वादशव्रतपालनाय श्रावक: सामाजिक न्यायेन सह आध्यात्मिकोन्नतिं कृत्वा स्वपरसुखमनुभवति। व्रतप्रतिमायामेवोक्तानि व्रतान्येव पृथक् पृथक् प्रतिमारूपेण वर्णितानि।

चतुरावर्तत्रितय: चतुर्प्रणाम: यथाजात: स्थित त्रियोग शुद्ध: त्रिसन्ध्यमभिवन्दनं सामयिक प्रतिमा अस्ति। चतुर्षु पर्वादिषु स्वशक्तिमनिगुह्य धर्मध्यानं च तत्परत्वम् प्रोषधनियमधारणं 'प्रोषधोपवास प्रतिमा' अस्ति। जीवदया - भावनया - सचित्तापक्व सर्व मूलफलशाकशाखापत्रपुष्पादीनां त्याग: 'सचित्तत्यागप्रतिमा' अस्ति। सत्त्वेष्वनुकम्पमानमना: विभावर्यां अन्नं पानं खाद्यं लेश्यं च त्यजतीति रात्रिभुक्तित्यागप्रतिमा अस्ति। दिवामैथुनस्य त्याग: दिवामैथुनत्यागप्रतिमा च कथ्यते। कामसेवनस्य सर्वथा त्याग: 'ब्रह्मचर्यप्रतिमा' अस्ति। प्राणातिपातहेतो: सेवाकृषिवाणिज्य प्रमुखादारम्भत: विरक्ति 'आरम्भत्याग प्रतिमा' भवति। दशसु वास्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरत: परिग्रहाद्विरति: 'परिग्रहत्याग प्रतिमा' अस्ति। गृहारम्भे विवाहकार्ये स्वाहारे धनार्जने च अनुमतिप्रदानात् निवृत्ति: ''अनुमतित्याग प्रतिमा अस्ति। कृतकारितादि सदोष सर्वान्नं अखाद्यभिक्षाशेषं त्यक्त्वा भिक्षयान्नं ग्रहणं उत्कृष्टोदिद्ष्ट त्याग प्रतिमा'' भवति।

एकादशप्रतिमाधारी श्रावक: **साधकश्रावक:** भवति। एष श्रावक: गृहत्यागी भवति। एषास्थिति: श्रावकमुनयो: मध्यवर्ती भवति। एष: श्रावक: मुनीनां व्रतानाम् अभ्यासं करोति। वस्त्रद्वयधारक: श्रावक: श्राविका वा क्षुल्लक: क्षुल्लिका वा उच्यते। एकखण्डवस्त्रधारक: श्रावक: ऐलक: भवति। साटिकाधारी आर्यिका च कथ्यते। आर्यिकाया: स्थानं श्रमणसमानमेव भवति। साधक श्रावक: मयूरपिच्छिकां कमण्डलुं च धारयति। मयूरपिच्छिका संयमस्य प्रतीका कमण्डलुश्च शुद्धे: उपकरणे भवत:। जीवनपर्यन्तं व्रतनियमान् पालयित्वा श्रावक: मरणमनिवार्यं ज्ञात्वा मारणान्तिकीं सल्लेखनामपि धारयति।[52]

इत्थं श्रावक: पाक्षिक नैष्ठिक साधकावस्थायां निर्वाहयन् आत्मोत्थानस्य सर्वश्रेष्ठमार्गं श्रमणधर्ममनुगच्छति। व्यक्तित्व विकासाय ईदृशी वैज्ञानिकी आचार संहिता अन्यत्र न भवति।[53]

श्रमणाचार

श्रमणाचारसंहितायां मुनिभ्य: पंचमहाव्रतानि पंचसमितय: पंचेन्द्रिय निग्रह: षडावश्यका: सप्तगुणा: इति अष्टाविंशतिर्मूलगुणा: निर्दिष्टा:। द्वाविंशतिपरिषहजय योग व्रत मौनं च श्रमणस्य उत्तरगुणा: सन्ति। क्षमादि दशधर्म अनित्यादि द्वादशानुप्रेक्षाया: चिन्तनमपि श्रमणस्य कर्तव्य:। एतत्पथमनुपालनं कृत्वा मनुज: निर्वाणं प्राप्तुं शक्नोति। जैनाचार्या: आध्यात्मविकासस्य चरमावस्थायै मोक्षसिद्ध्यै ध्यान योगस्यापि विस्तृतं वर्णनमकुर्वन्।[54] श्रमणाचार संहितायै पृथक प्रबन्धस्यापेक्षा वर्तते। अत: अस्य वर्णनमत्र संक्षिप्य क्रियते।

इत्थम् जैनाचार: आचारसंहिताया: उच्चादर्शस्य पराकाष्ठाया: प्रतीक: अस्ति। य: आचारशुद्धिं भावशुद्धिं च करोति, अन्तत: पर्यावरणशुद्धिं विदधाति। एतं न केवलं धार्मिक नियमानां संदर्भे ज्ञातव्यं अपितु दैनिक व्यवहारे आचरण योग्यं ज्ञातव्यम्। तप: संयम त्यागानां त्रिवेणी इत: प्रवहमाना सती जनान् आध्यात्मगंगया आप्लाव्य न केवलं समाजं राष्ट्रं अपितु विश्वमपि स्वस्थजीवन पादपमंकुरयितुं प्रभविष्यति।

सन्दर्भ स्थल —

1. अंगाणं किं सारो! आयारो। आचारंग निर्युक्ति - गाथा 16
2. महाभारत, 13 / 149
3. मनुस्मृति, 1 / 207
4. हरिभक्ति विलास, 3 / 10
5. मनुस्मृति, 4 / 156, प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, 1993
6. 1. कौटिल्य
   2. जैनाचार सिद्धान्त स्वरूप - देवेन्द्रमुनि शास्त्री, प्र. - श्री तारक गुरु जैन ग्रंथालय, उदयपुर, पृ. 5
7. महाभारत - अनुशासन पर्व 1
8. मनुस्मृति, 1 / 110
9. (क) महाभारत - अनुशासन पर्व, 149 / 37)क) वशिष्ठ धर्म सूत्र, 6 / 3 (ग) देवी भागवत, 11 / 21 (घ) वृद्धोपयोगी यागवल्क्य, 8 / 71
10. वीर वर्धमान चरित्र भ. सकलकीर्ति, 19 / 208 - 214, प्र. - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
11. अभिधान राजेन्द्र कोष, विजय राजेन्द्र सुरीश्वर 'सावय' शब्द, प्र. - श्री जैन श्वेताम्बर संघ, रतलाम, 1913 - 14
12. जैनाचार, देवेन्द्र मुनि, पृ. 231
13. क. जैनधर्म का सरल परिचय, बलभद्र जैन, प्र. - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, 1996, पृ. 128
    ख. जैन श्रावकाचार का अध्ययन : सागर धर्मामृत के विशेष संदर्भ में, शोध प्रबन्ध, डॉ. सुधा जैन, 1987
14. तत्र पक्षो हि जैनानां कृत्स्नहिंसा विवर्णनम्।
    मैत्री प्रमोद कारूण्यमाध्यस्थैरूपवृंहितम्।
15. मद्यमांसमधुत्यागैः सहोदुम्बर पञ्चकैः।
    गृहिणां प्राहुराचार्या - अष्टौमूलगुणानिति॥, *श्रावकाचार* पूज्यपाद, 14
16. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, समन्तभद्र, 66
17. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, व्याख्याकार - पं. सदासुख, पृ. 127 - 129
18. शाकाहार विज्ञान, डॉ. नेमीचन्द जैन, प्र. - हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर, पृ. 56 - 57
19. वही, पृ. 56 - 57
20. सागार धर्मामृत, पं. आशाधर, 3 / 11 - 12
21. शाकाहार या मांसाहार, गोपीनाथ अग्रवाल, पृ. 29, 30
    शाकाहार सभ्यता की नई सुबह, डॉ. नेमीचन्द जैन
22. सागार धर्मामृत, 2 / 11
23. स्वास्थ्य विज्ञान, डॉ. भास्कर गोविन्द घाणेकर, पृ. 382
24. (क) सुश्रुत संहिता, 46 / 466
    (ख) चरक सूत्र, 25 / 40
    (ग) स्वास्थ्य विज्ञान, डॉ. मुकुन्द स्वरूप शर्मा, पृ. 345
    (घ) न दुह्येत् सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत्।
    न नक्तं चैवभ श्रीयाद् रात्रौ ध्यानपरोभवेत्। (कूर्म पुराण)
    (ङ) अम्भोदपटलच्छने नाश्रान्ते रविमण्डले।
    अस्तंगतेतू भुञ्जनां अहो भावो सुसेवकाः।
    ये रात्रौ सर्वदाऽऽहारं वर्जयन्ति सुमेधसः।
    तेषां पक्षोपवासस्य फलं मासेन जायते।
    मृते स्वजन मात्रेऽपि सूतकं जायते किल।
    अस्तंगते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथम्। (महाभारत)
25. वीरोदय काव्य, मुनि ज्ञानसागर, 19 / 29

26. श्रावकाचार संग्रह, भाग - 2, पृ. 48, पद्य 90
27. अतिसार, मस्तिष्कज्वर, नेत्र रोग, संक्रामक यकृत अमीबाईसिस आदि।
जलशुद्धि और शरीर विज्ञान, डॉ. नीलम जैन, गुप्ति संदेश पत्रिका, वर्ष - 5, अंक - 102, अक्टूबर - नवम्बर 1996, पृ. 19
28. देवपूजा गुरुपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने।
— श्रावकाचार संग्रह, स - पं. हीरालाल शास्त्री, पृ. 147
29. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 136 - 141
30. तत्त्वार्थ सूत्र, उमास्वामी, 7 / 8
31. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 53
32. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, आ. अमृतचन्द्र, पद्य 44
33. वीरोदय काव्य, 16 / 15
34. तत्त्वार्थ सूत्र, 7 / 8
35. वीरोदय काव्य, 16 / 15
36. तत्त्वार्थ सूत्र, 7 / 19
37. जैन वाङ्मय में पर्यावरण चेतना, डॉ. संगीता मेहता, अर्हत् वचन, वर्ष - 8, अंक - 2, पृ. 33
38. तत्त्वार्थ सूत्र, 7 / 9
39. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 55
40. सच्चं च हियं च मित्तं च गाहणं च, प्रश्न 2 / 2
41. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 57
42. तत्त्वार्थ सूत्र, 7 / 11
43. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 59
44. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 60
45. तत्त्वार्थ सूत्र, 7 / 12
46. (क) रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 61
(ख) वीर वर्धमान चरितम्, 18 / 45
47. सागारधर्मामृत, 5.1
48. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 74
49. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 82
50. तत्त्वार्थ सूत्र, 7 / 16
51. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 92 - 97, 106
52. तत्त्वार्थ सूत्र, 7 / 17
53. जैन धर्म का सरल परिचय, बलभद्र जैन, प्र. - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, 1996, पृ. 128 - 129
54. जैनाचार, मोहनलाल मेहता, पृ. 40, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय पद्य 201 - 210

प्राप्त - 5.9.99

Vol. 12, No.-1, January 2000, 61-66

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

COLOUR
The Wonderful Charecterstic of Sound

■ Muni Nandighoshvijay *

In the Oct.-Dec. 92 issue of 'The Quarterly' of Farbus Gujarati Sabha, I read the articles - 'Colour : The Wonderful Charecterstic of Sound', written by Urmiben Desai and 'The Secrets of the Samskrita Alphabet and Incantation Sound', written by Shri Ashok Kumar Dutta. I was greatly delighted and astonished to read them. Theortically, The Jaina philosophy regards sound as a transformation of pudgala (matter). Therefore, under no circumstances can the possibility that the sound has colour, can be ruled out. But the common man cannot grasp the colours of sound with his eyes. As I went on reading Shri Dutta's article and his extrasensory perceptions, my faith in Jaina philosophy became stronger and stranger.

I think that the particle-form of light must be accepted for explaining the phenomenon of photo-electric effect of light and ultraviolet rays and the wave-form of light must be accepted for explaining the fact i.e. phenomenon of interference of light. Similarly, the sound which is absolutely/fully accepted in the wave-form in modern science by scientists, is really in the form of particles according to the Jaina philosophy. And the extrasensory perceptions of Ashok Kumar Dutta also proves that sound is in the form of particles. Therefore, in course of time, the dual nature of sound like that of light will have to be accepted. As the branch of quantum mechanics has developed in respect of light, a new type of quantum mechanics will emerge in respect of sound. Recently, 'Abhiyan', a weekly magazine gave an information about an electronic instrument invented by scientists for protection against sound-pollusion. It also explained how the instrument works. With the help of it an anti-sound is produced against sound. The anti-sound goes towards the sound, dashes against it and destroys it. It works on the principle of destructive interference.[1] For this reason sound must be accepted to be in the form of wave. But scientists explain the propogation of sound with the help of particles existing in the medium of air. And it is shown in the figure below :

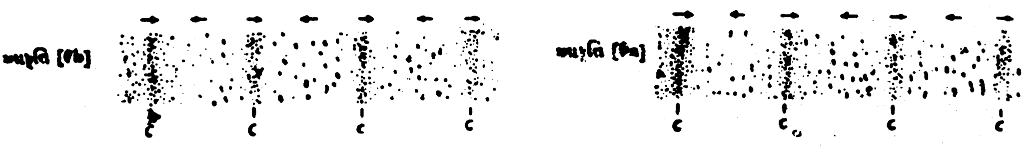

* Swetāmbara Jain Muni, C/o. Dr. Anil Kumar Jain, B-26, Suryanarayan Society, Sabarmati, Ahmedabad-5

When the sound wave passes, the particles in air seem to be pushed very near to one another in certain parts. These parts are called crests of sound waves and they are shown by 'C' in the figure. These crests move from the left to the right. Fig. (a) shows the condition of the first moment and Fig. (b) shows the condition of the next moment. The portion which has a larger number of air particles i.e. greater density of medium, is called a crest of wave. The position which has a less/low density of medium, is called a trough of wave. This description of propogation of sound shows that sound is in the form of particles. Jaina scriptures also show this method of propogation of sound. The only difference is that the particles of medium are replaced there by constituent paramāṇu - units of bhāṣā vargaṇā.

The ancient Jaina philosophical literature[2] and the science of mysticism[3] accept sound only in the form of particles. They also show its colours. In the modern western literature there is a mention/reference that two or three western scientists have seen colours of sound.[4] People like Shri Ashok Kumar Dutta, who have a natural gift of this sort or extrasensory perceptions, even today, is able to see the colours of sound.[5]

The Jaina philosophy believes that sound is produced by paramāṇu - units of a matter i.e. bhāṣā vargaṇā. Every charecterstic of a poudgalic atom i.e. paramāṇu is , therefore, present in sound even in a subtle form. The Tatvārthasūtra, which is acceptable to all sects of Jaina, namely, Digambara, Śvetāmbara, Terāpanthī and Sthānakavāsī, clearly states that as a pudgala (matter) has colour, smell, taste and touch, so its minute or smallest indivisible part called atom i.e. paramāṇu also has colour, smell, taste and touch.[6] Therefore as a man of/with extrasensory perception can see the colour of sound, so such other people, having different type of extrasensory power, can perhaps experience taste and smell. Everyone experiences the touch of sound. The tape - recorder, the gramophone record etc. are constructed with the help of touch of sound and very clearly, we do experience the touch of a very big sound. It is therefore, not necessary to elaborate on this.

The ancient Jaina tradition shows that some distinguished ascetics attained such type of extraordinary or extrasensory powers by virtue of their Penaence. In Jaina literature, such extrasensory power is known as a 'labdhi'. The book of rituals entitled 'Shri Siddhacakra Mahāpūjan' and 'Sūrimantra' etc. mention the names of various 48 types of labdhis. Among them, there is a special type of labdhi called 'Sambhinnasrotas'.[7] Whoever attains this labdhi, can get through any one of his senses, the knowledge, which can be obtained by

other four senses e.g.. Only through the sense of touch/skin, he can see, smell, hear and taste. Of course, the attainment of such extrasensory power i.e. labdhi seems to be improbable/impossible in the present day world. Some people, therefore, may not believe it, but for this reason it is not proper to make the statement that such extrasensory powers do not exist.

Therefore, the power of direct experience of the colour of sound attained by Dutta, must be some special type of labdhi. According to the Jaina theory of karma, this extrasensory power of Dutta, must have been attained by annihilation-cum-subsidence of matijñānāvaranīya karma (karma covering the empirical knowledge of soul), because this type of karma covers the knowledge received through the five senses and mind. This kind of karma obstructs the direct knowledge received through sense-organs. When the cover of this type of karma is removed, one naturally receives direct knowledge through sense-organs.

Shri Dutta's extrasensory perception of the colours of Samskrita letters and the colours of Samskrita letters shown in the books of ancient tantric/mystic science are not in agreement at many places. Moreover, even in the books of tantric/mystic science the descriptions of the colours of Samskrita letters are not in mutual agreement.[8] But these references certainly prove that ancient sages and monks and distinguished tantrikas i.e. special kind of worshippers experienced colours of sound.

Shri Dutta is an engineer in 'Bharat Heavy Electricals Limited'. He has, therefore, attempted to analyse his extrasensory perceptions according to scientific methods. He has taken pains to determine the colour of every letter. He has also tasted his experiences of colour of sound by comparing them to the rules of sandhi (euphonic coalition of letters) and dissolution of sandhi in grammer of the Samskrita language. He has also shown the graphic method of showing wonderful power of various mantras and names by well-arranged tables through knowing the different colours of each letter (a vowel or a consonant) of the Samskrita alphabet and its glitter and intensity.

According to him, assemblance of coloured particles produced by sound united with one another and underwent a transformation into an assemblance of particles of a different colour. They perhaps followed the rules of sandhi (combination of letters) of the Samskrita language. In his article, he has given illustrations of this transformation. On the basis of his expereinces he says that the Samskrita language is very scientific.

Really speaking, the languages of the world other than Samskrita,

pronounciations do not agree with the letters of a word. While in the Samskrita language pronounciations is in complete agreement with the letters of a word. e.g. The English language has the words - know, now and no. The pronounciation of the word 'know' is in complete variance with the letters of the word. The letter 'K' is unpronounced (silent). The letter 'W' is also silent. In the word 'now', 'o' is pronounced as 'ā', that does not agree with the letter. The pronounciation of the word 'no' is in accordance with its letters. But when the letters of the word 'no' are pronounced separately, they are pronounced as 'en', 'o'. Thus the sound form of its letters is different from its combined sound form. In the English language, pronounciations differ from speaker to speaker. Some pronounce 'the' as 'Dhee' (धी) and some pronounce it as Dha (ध) while Hindi speaking people prounce it as 'Da' (द). None of these pronounciations agree with the letters T.H.E.

It is not so in the Samskrita language. In Samskrita language, words are pronounced as they are written. No consonant or vowel is silent in the pronounciation.. Of course the vowels and the consonants join according to the rules of sandhi and they change their form. But the words are pronounced as they are written. Not a single letter, vowel or consonant remains unpronounced e.g. रामः अत्र उपविशति, Rāmah atra upaviśati. This sentance is pronounced according to the letters. But when the words are joined by the rules of sandhi, the sentence is pronounced as रामोऽत्रोपविशति, Rāmotropaviśati. In this sentence अ of म is followed by the visarga (:) and both are changed into ओ because both are followed by a vowel अ. Some way अ of त्र and उ of उपविशति, both are changed into ओ. Both the ओ are to be surely pronounced, while the vowel अ of अत्र disappears by the rules of sandhi, so it is not pronounced. Such strict observance of rules is not known in any other language. Of course, the languages derived from the Samskrita language try to keep these rules and therefore for a systematic and scientific study of colours of sound, the Samskrita language is the best medium.

Illustrations from the Gujarati language, given by Shrimati Urmiben Desai as under :

शेख + चल्ली = शेक्चल्ली, हाथ + कडी = हात्कडी, शोध + ता = शोत्ता, सूंघ + ता = सूंक्ता, मग + खाधा = मक्खाधा, कूद + को = कूत्को, डूब + तो = डूप्तो, नाग + पुर = नाक्पुर

(śekha + calli = śekcalli, hātha + kadī = hātkadī, sodha + tā = sottā, sūngha + tā = soonktā, maga + khādhā = makkhādhā, kūda + ko = kūtko, dooba + to = doopto, nāga + pura = nākpura)

show that transformation in the coloured particles of energy, follows the pronounciations and not the letters of words of language.

It is a special feature of the pure Samskrita language that its pronounciations/sounds fully follow the letters (alphabet). That is why the rules of sandhi and dissolution of sandhi of the Samskrita grammer apply or can be applied to coloured energy particles of sounds of Samskrita language. If there is a hyphen i.e. farness between Samskrita letters or words sandhi is not permissible. Similarly, if sounds of Samskrita letters of words are seperated, the colour, glitter etc. of coloured energy particles do not undergo transformations, e.g. If तत् 'tat' and श्रुतम् 'śrutam' are spoken seperately, they will not be united by alphabetical sandhi and consequently the coloured energy particles of the तत् 'tat' and श्रुतम् 'śrutam' will not undergo any transformation. In short, it should be accepted that colours of sounds of any sort, follow the pronounciation and not the letters of alphabet.

The English language is quite unfit for the study of colours of sounds because the pronounciations of its alphabets/letters except A, E and O, have two or more letters. Moreover, the pronounciations of words are not at all in accordance with its letters. e.g. The letter 'a' is sometimes proniunced as 'ə' as in 'above'. sometimes as 'ā' as in car and sometimes as 'ai' as in 'parent'. This is probably in the case of every letters of English alphabet. The importance of the Samskrita language that Dutta explains on the grond of his experience is, therefore, real. It is on account of its strict observance rules that it is accepted as the best computer language.

Regarding the word 'Rāma', Dutta writes in his article : "In graphic method the words 'Rāma' and 'Marā' are of equal magnitude and, therefore, there is no difference between their energies," But according to me, this statement is not proper. The energy of sound or word does not depend only on the magnitude of its graphic form or written form. There are several ways of writing. The sequential order of writing letters in the word 'Marā' is reverse to the sequential of writing letters in the word 'Rāma'. Though the energy of the word 'Marā' is equal to the energy of the word 'Rāma', it is of the negative type. This is my inference. In the science of incantation **(मन्त्रविज्ञान)**, there are different ways of reciting mantras/incantations. e.g. If recited according to the right sequence **(पूर्वानुपूर्वी)**, the Namaskāra mahāmantra **(नमस्कार महा मंत्र / णमोकार मंत्र)** gives spiritual reward but it is recited according to the reverse order **(पश्चानुपूर्वी)**, if it gives material rewards.[9]

Thus on the one hand, Dutta's experiences of sound strongly support

the sound form described in Jaina philosophy and on the other hand they raise a question mark about the wave theory of modern science.

In conclusion, I hope that the scientists of our country will help me in carrying on research in this branch of study.

CONTENTS -

1. See : 'Abhiyān' of April 6, 1992, Page No. 7,8, by Nagendra Vijay.
2. सद्दंधयार उज्जोअ, प्रभा छाया ऽऽ तवेहि अ।
   वन्न - गंध - रसा - फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥ 11 ॥

   saddandhyayāra - ujjoa, prabhā - chāyātavehi a,
   vanna - gandha - rasā - fāsā, puggalaṇam tu lakkhaṇam.

   (Nava tattva Gāthā - no. 11)

3, 4, 5, 8. See 'The Quarterly' of Farbus Gujarati Sabha, Bombay, Page 276 to 288.

6. स्पर्श - रस - गन्ध - वर्णवन्त: पुद्गला: ॥ 28 ॥
   sparśa - rasa - gandha - varṇavantah pudgalāh.(The Tattvārthasūtra, Adhyāya - 5)
7. See : Sri Siddhacakra mahā poojana, labdhipad poojan.
9. See : The 'Kirtar' column in the adhyatmapoorti of Gujarati Samachar of July 15, 1993.

Received - 4.3.1997

जैन विद्या का पठनीय षट्मासिक

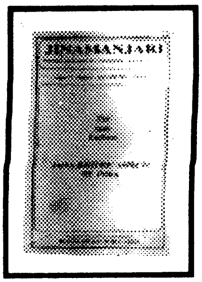

JINAMANJARI

Editor - S.A. Bhuvanendra Kumar

Periodicity - Bi - annual (April & October)

Publisher - **Brahmi Society, Canada - U.S.A.**

Contact - S.A. Bhuvanendra Kumar

4665, Moccasin Trail,

mISSISSAUGA, oNTARIO,

canada l4z 2w5

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

Vol. 12, No. 1, January - 2000, 67 - 74

INDIAN CONTRIBUTIONS TO MATHEMATICS WITH SPECIAL REFERENCE TO MISPLACED CREDITS OF JAINĀCĀRYAS*

■ Anupam Jain **

Respected Madam Padmavathamma and Honourable Delegates,

First of all I would like to congratulate to the organisers, specially to the Vice - Chancellor Prof. Hegde on behalf of myself and on behalf of Institutions to which I am related for giving me an opportunity to deliver a talk on History of Mathematics. My area of specialization is Jaina School of Mathematics therefore I have selected my topic related to Jaina School of Mathematics and it is *'Indian Contributions to Mathematics with Special Reference tp Misplaced Credits of Jainācāryas'*

India is a religious country. In ancient time here people give much importance to the religion and religious ceremonies. They fix the utility of any knowledge by its use in understanding the religion and philosophy and performing religious ceremonies. Due to this very special circumstances, religious centres and texts are very important source to bring out the development of knowledge in any field. Of course it is true that the climate of India is not suitable for long preservation of ancient records. Political and communal disturbances also damaged it a lot. Even than the records of old *Mathas* and *Bhandārs* are very useful for us.

The oldest evidence of mathematical knowledge to Indians is found in the Indus valley civilization. The metalic seals found in the excavations of Mo - un - jo - dāro and Harappā indicates that the people of this civilization have the knowledge of large numbers. It is also clear from the potteries and other archaeological remains that they have knowledge of Geometry. Vedas which are said to be the oldest written document in India, contain some mathematical knowledge even in the crude form.

Indians give much importance to Mathematics. It is clear from a verse of *Vedāṁga Jyotiṣa*

यथा शिखा मयूराणां, नागानां मणियो तथा।
तद् सर्व वेदांगानाम्, गणितं मूर्ध्नि स्थितम्॥ [1]

---

* Invited talk delivered in International Conference on Combinatorics, Statistics, Pattern Recognition and Related Areas, Mysore University, Mysore, 28 - 30 Dec. 1998.

** Res.: 'Gyan Chhaya', D - 14, Sudama Nagar, Indore - 452 009 Ph. & Fax : 91 - 731 - 787790
E - mail : kundkund@bom4.vsnl.net.in

Similarly, we find an interesting verse in the work of Mahāvīrācārya, who lived in this (Mysore) state. He has written first text book on Mathematics namely Gaṇita - sāra - Saṁgraha. He wrote -

बहुभिर्वि प्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत् किंचिद्विस्तु तत्सर्व गणितेन बिना नहि ।।[2]

A very short review of the development of the mathematical knowledge in all four stages of Vedic literature i.e. **1.** Saṁhitā, **2.** Brāhmaṇa, **3.** Araṇyaka and **4.** Vedāṁga is available in the following books & articles -

1. B.B. Dutta & A.N. Singh, History of Hindu Mathematics, 2 Vols., Reprint, Asia Publishing House, Bombay, 1962
2. C.N. Srinivasiengar, The History of Ancient Indian Mathematics, World Press, Calcutta, 1967
3. B.L. Upadhyaya, Prācīna Bhārtīya Gaṇita (Hindi), Vigyan Bharti, Delhi, 1971
4. T.A. Saraswati, Development of Mathematical Ideas in India, I.J.H.S. (Calcutta), 4 (1-2), 1974, p. 59-78
5. A.K. Bag, Mathematics in Ancient & Medieval India, Chaukhamba Orientalaya, Varanasi, 1977
6. T.A. Saraswati, Geometry in Ancient & Medieval India, M.L.B.D., New Delhi, 1979
7. Sharda Srinivasan, Mensuration in ancient India, Ajanta Publication, Delhi, 1979

The authors of all these books & articles came on the conclusion that in the saṁhitās and Araṇyakas, we get the use of big numbers and a process of addition. While śulva sūtra, which are 9 in number and a part of Kalpasūtras of Vedāṁga, are a good source of knowledge of Geometry. In fact, the development of geometry was done by Indian scholars due to its utility in constructions of altors for religious ceremonies.

Even today there is a strong need to bring out a more comprehensive and systematic study on the development of mathematical thoughts in India. In last 2-3 decades so many researches came out in this field but they are not incorporated in the books on History of Mathematics. In the process of compilation of History one way is to compile it period wise. The development of mathematics in India may be put in the following sub groups -

1. Initial period (Ādi kāla) 3000 - 500 B.C.

   A – Vedic 3000 - 1000 B.C.

B – Śulva 1000 - 500 B.C.

2. Childhood period (Śaiśava kāla) – 500 B.C. - 500 A.D.
3. Middle period (Madhya kāla) – 500 A.D. - 1200 A.D.
4. Later period (Uttara kāla) – 1200 A.D. - 1800 A.D.
5. Modern period (Ādhunika kāla) – 1800 A.D. onwards

Some otherways for compilation of History of mathematics in India may be -

(a) Area wise
(b) Language wise
(c) Religion wise

The well known book on History of Mathematics written by D.E. Smith[3], which is available in 2 vols. is written in two ways simultanously.

Vol. - 1 Period wise
Vol. - 2 Subject wise

The book entitled 'Muslim Contribution to the Mathematics written by Abdullah Aldaffa[4] is an example of religion wise studies. Greek Mathematics by Heath[5] and Chinese Mathematics by J. Needham[6] are the good example of area wise studies. But, in a country like India, where so many languages are in practice at that time and still being used very well and where people of different faiths live together but believe in their own religion. It is rather difficult to do justice with all the manuscripts of different scripts and different religions by one author. A north Indian scholar, who do not know Kannada or Tamil cannot do justice with the manuscripts of these languages or scripts. On the basis of it, I can firmly say that today there is a strong need of a book which can give a consolidated picture on Indian Contribution to Mathematics. The two new books -

1. Ancient Indian Mathematics by T.S. Bhanumurthi, Willey Eastern Ltd., New Delhi, 1992
2. Mathematics in History, Culture, Philosophy and Science by Sarju Tiwari, Mittal Publication, Delhi, 1997

are not able to serve the purpose completely.

I think there is no need to list out the Indian Contributions to Mathematics because it has been already given in the books already mentioned above and its listing will positively increase the length of this talk which is not suitable

at present. Now I would like to draw your attention towards some facts which are not available in the existing books on History of Mathematics.

The well known books in the field of History of Mathematics are written by Smith[7], Bell[8], Cajori[9], Eves[10], Mohan[11], Boyer[12] & Kline[13]. All these books mentions sulva Sūtras, Āryabhaṭa, Bramhagupta, Śrīdhara, Mahāvīra & Bhāskara. They also mention the contributions of Ramanujam. The books on Indian Mathematics mentions some more names and gives their contribution but even then a lot of ignored due to the unavailability of proper informations to the writter of those books. The situations is more serious regarding Jainas because before 1912 A.D., no one knows about Jaina School of Mathematics. Here I am giving a list of 20 Jaināсāryas, who contributed directly or indirectly for the development of mathematics upto 10th cent. A.D. —

1. Ācārya Guṇadhara (2 - 1 C.B.C.)
2. Ācārya Kundakunda (1 C.B.C. - 1 C.B.C.)
3. Ācārya Dharasena (1 C.A.D.)
4. Ācārya Puṣpadanta (1 C.A.D.)
5. Ācārya Bhūtabali (1 C.A.D.)
6. Ācārya Umāsvāmī (2nd C.A.D.)
7. Ācārya Yativṛaśabha (2 - 7 C.A.D.)
8. Ācārya Umāsvāti (2nd B.C. - 6th A.D.)
9. Ācārya Pūjyapāda (Devanandi)(539 A.D.)
10. Ācārya Jinabhadra Gaṇi (609 A.D.)
11. Ācārya Akalanka (620 - 840 A.D.)
12. Ācārya Vidyānandi (775 - 840 A.D.)
13. Ācārya Śrīdhara (799 A.D.)
14. Ācārya Vīrasena (816 A.D.)
15. Ācārya Jinasena (9th C.A.D.)
16. Ācārya Mahāvīra (850 A.D.)
17. Ācārya Kumudendu (860 - 880 A.D.)
18. Ācārya Śilānka (9th C.A.D.)
19. Ācārya Nemicandra Siddhānta Cakravartī (981 A.D.)
20. Ācārya Padmanandi (977 - 1043 A.D.)

It indicates the importance of Mathematics in Jainsim. Mathematics play an important role in Jainism. But regarding the reason for giving much importance to Mathematics in Jainism. I slightly differ with Prof. B.B. Dutta, a great scholar of Indian Mathematics. He says -

'The necessity of Jaina priest to learn Mathematics, aries by way

of finding proper time and place for religious ceremonies.'[14]

It does not only put the clear picture but even misguide in some respect. It may be one reason which is less important to others. In this context the remark of Prof. L.C. Jain , s senior historian of Indian Mathematics is more appropriate. He says —

Mathematics stood as the magnifiscant crown of the Jaina philosophy. Jaina asectics experimented with their 'self' and evolved mathematical formalism known as 'Lokottara Pramāṇa'. Their karma theory is a highly developed Mathematical system based on powerful tools of their set theory. The purpose of evolving such theories was to find solutions of the problem of the life and death for the realisation of an endless life full of infinite knowledge, power and bliss.[14]

He again write -

There is practically no field in Jainology where mathematics had not stood as crown though its life blood activity in the cellular mechanisn of philosophy and system of eternal & blissful life.[14]

Even two centuries back a great Jaina writer Todarmal writes that without the knowledge of Mathematics no one can understand Jainagamas well. He writes in prefface of commentory of Triloksāra -

बहुरि जे जीव संस्कृतादिक के ज्ञान सहित हैं किंतु गणिताम्नायादिक के ज्ञान के अभाव ते मूल ग्रन्थ या संस्कृत टीका विषै प्रवेश न करहु तिन भव्य जीवन काजे इन ग्रन्थन की रचना करी है।[16]

It is also clear from the subject wise classification system of Jaina literature[17] -

1. Prathamānuyoga (प्रथमानुयोग)
2. Karaṇānuyoga (करणानुयोग)
3. Caraṇānuyoga (चरणानुयोग)
4. Dravyānuyoga (द्रव्यानुयोग)

Here books related with Karṇānuyoga and Dravyānuyoga are of much interest of Mathematicians. In the process of discussion of structure of Universe, we get much information on Geometry, Astronomy, Traditional Arithematics and Algebra in the texts of Karṇānuyoga group. The texts of Dravyānuyoga group deals with the philosophy and those contains a lot of information on set theory, System theory etc. In fact no rigid classification is available. There are so many texts like Dhavalā which comes in both the group i.e. Karṇānuyoga and Dravyānuyoga and have a lot of material of mathematical interest. In connection

with an INSA project (1992-95) Prof. L. C. Jain has written five volumes on 'The Mathematical Content of Digambara Jaina Texts of Karṇānuyoga group.'

Now without going in much details, I am mentioning few points which were earlier discovered by Jainācāryas but still in the books on History of Mathematics, we find wrong informations. The credits are given to other scholars.

1. Fibonnaci Numbers & Fibonnaci Sequences are first found in the Gaṇita-Sāra-Saṁgraha of Mahāvīrācārya (850 A.D.). It is discussed in detail in G.S.S. of 9th c. A.D.[18] Process of finding prependiculars & base for fixed **C** is available in G.S.S., but credit is given to Fibonnacci (1202 A.D.) and Vieta (1580 A.D.)[19], it is also clear by the name also. Actually credit should be given to Mahāvīrācārya (850 A.D.).

2. The general formula for combination

$$^{n}C_{r} = \frac{n!}{r!(n-r)!}$$

is available in G.S.S. by Mahāvīra (850 A.D.)[20] but credit is given to Herigon (1634 A.D.)[21]. The theory of combination & permutation is available in many Jaina texts by the name *Vikalpa* or *Bhanga.*

3. The general formula for Purmutation is

$$^{n}P_{r} = \frac{n!}{(n-r)!}$$

is given in the commentory of Anuyogadvāra sūtra by Hemchandra.[22] while it is mention in the book of Smith that it is invented in Europe in 14-15th centuries.[23]

Of course the topic of combination & purmutation is one out of 10 topics of mathematical discussions in Jaināgamas and the relevent verse -

परिकम्म ववहारो रज्जु रासी कलासवन्ने।
जावंतावति धणो वग्गवग्गो विकप्पोत।[24]

4. The concept and formula for logarithims is available in the Tiloyapannatī[25] (2-7th centuris) and in the Dhavalā commentory of Ṣaṭkhaṇḍāgama written by Vīrasena (816 A.D.)[26]. The formulae which are available -

$\log m.n = \log m + \log n$

$\log m/n = \log m - \log n$

$\log m^{n} = n \log m$

Not only this but the concept of log log and log log log is also

available in Dhavalā. More informations is available in the article of Prof. L.C. Jain 'On some mathematical Topics of Dhavalā text'[27] or in the book 'Exact Sciences from Jaina Sources, Vol-1', 'Basic Mathematics'.[28] But credit for invention of logarithim is given to John Napier (1550-1617) and Just Burgi (1552-1632) which is highly objectionable.[29] Of course, it is true that in Dhavalā all the rules are discussed with base 2,3,4, but in the modern Mathematics base '10' and 'e' are more popular but operational rules are same which are given earlier.

5. In the same Dhavalā there exists concepts and illustrations of set theory. In fact the world (Rāśi) used for sets. Other synonomical worlds are *Ogha, Punja, Sampāta, Bhavya Jīva Rāśi*, Mithyā dṛṣṭi Jīva Rāśi, *Vanaspati Kāyika Jīva Rāśi*, all are well defined hence they are sets. The concept of finite and infinite set, Singleton set, Null set, Sub set, Super set, etc, are available in detail in Dhavalā[30] but the credit for the invention and development goes to George Cantor (17th C.A.D.)[31]. Of course it may be true that concept of set was developed by George Cantor independently but on this ground we can not neglect the contribution of Yativṛṣabha or Vīrasena. People of Karnataka may be proud to know that old manuscript of Dhavalā written on palm leaf are preserved in Jaina matha Moodbidri (South Canara).

6. The Discontinued fraction are available in Dhavalā Vol-3 in 9th Century.[32] While credit goes to Antonio Catoildi (!540-1620)[33]

7. Concept of Probability is available in the Āptāmimānsā Commetory written by Sammantabhadra (2nd C A.D.)[34] while Credit goes to Galileo (1654-1642), Fermat (1601-1625), Pascal (1623-1662). Bernouli (1654-1705).[35] It is available in the name of अवक्तव्य which is primary form of Probability. Of course it is in crude form.

8. Same is the situation with unit fraction, Principle of Potential Energy. Law of addition of two fraction with unequal denominator, Finding the area of Ellips and other typical geometrical figures etc.

Finally I would like to say that a new book on History of Indian Mathematics should be written and at the relevent palces all the new researches in the field of History of Mathematics should be incorporated. This book will provide base for compilation of world History of Mathematics. Only in this way we can do justice with Indian Contribution.

Thank You to all of you for co-operating me.

References -

1. Jyotiṣa Vedānga, P-41
2. Gaṇita-Sāra-Saṁgraha, Mahāvīrācārya, English Translator & Editor - M. Rangacharya, Hindi Transtation. Prof. L.C. Jain, Solapur, 1963, Ch-I Verse-16, Shortly (G.S.S.), i.e 1/16, P-3
3. D.E. Smith, History of Mathematics, 2 Vol., Dower Publication, New York, 1923, 1925
4. Gaṇita Bhārati (Delhi), Bulletin of Indian Society for History of Mathematics.
5. T.L. Heath, A. History of Greek Mathematics, 2 Vol., Oxford 1921
6. J. Needham, Science and Civilization in China, 3 Vol., Cambridge 1954
7. Smith, History of Mathematics, Ref. 3
8. E.T. Bell, Development of Mathematics, Macgraw hill, New York, 1940
9. F. Cajori - History of Mathematics, Macmillan, New York, 1958
10. Horward Eves, An Introduction to History of Mathematics, Reinholt & Winston - New York. 1964
11. B. Moham, Gaṇita Kā Itihāsa (Hindi), U.P. Hindi Grantha Scademy, 1965
12. C.E. Boyer, A History of Mathematics, John Willey, New York, 1968
13. Morris Kline, Development of Mathematical Thoughts from Ancient to Modern time. Oxford University Press, Oxford 1972.
14. B.B. Dutta, The Jaina School of Mathematcs, B.C.M.S. 9Calcutta), **29** (1929), P.
15. L.C. Jain, Role of Mathematics in Jainology, Prachya Pratibha, Bhopal, 1976, P. 91.
16. Commentory of Triloksāra (Hindi) Todarmal, Pūrva Pīthikā, Bombay, 1911
17. Ratnakaranda Srāvakācāra, Ācārya Samantbhadra 2/43-2/46
18. G.S.S. Ch. 7, Verse 95, 97 & 122
19. L.E. Dickson, History to Theory of Numbers, Vol-II, Washington, 1923, P. 167
20. G.S.S., 6/218, P. 246
21. Smith, History of Mathematics, Vol.-2, P. 257
22. Commentory of Anuyogadvāra sūtra, Hemchandra.
23. Smith, History of Mathematics, Vol-2, 524-528
24. Sthānāṁga Sūtra, Ch. 10. Verse 727 Also see Sūtrakritānga-Srutakrandha-2, ch.-I, sūtra 154 which have a similar type of verse with some diffrence.
25. Tiloyapaṇṇtī, Yativrsabha, Hindi Comm. by Āryikā Visuddhamatī, 3 vols. Dig. Jain Mahasabha, Kota, 1984-89
26. Ṣatkhandāgama with Dhavalā Commentory, Vol 1-16, 1st Ed., Amaravati, Vidisha, 1939-59, IInd Ed. Jain Samskriti Saṁrakshak Saṁgha, Solapur, 1972 see vol.3, P-21-60,85
27. L.C. Jain, On some Mathematical Topics of Dhavalā Texts, I.J.H.S. 11 (2) PP.85-111, 1976
28. L.C. Jain, Exact Science from Jaina Sources, Vol. I & II, Rajasthan Prākṛit Bhārtī, Jaipur, 1982-83
29. Smith. History of Mathematics, Vol. II, P-514-523 & B. Mohan, Ganita Ka Itihasa, P-220
30. L.C. Jain. Set Theory in Jaina School of Mathematics, I.J.H.S. (Calcutta) 8 (1) PP 1-27, 1973
31. B. Mohan. Gaṇita Kā Itihāsa, P-438-442
32. Dhavalā, Vol.3, PP 45-46
33. Smith. History of Mathematics, vol. II. P-419
34. Apta Mimāṁsa by Samantabhadra, CH-7, Verse 15-16
35. Ramesh Chand Jain, Syādvāda Ke Sapta Bhaṁga evam Ādhunika Gaṇita Vijñāna. Proceeding of International Seminar on Jaina Mathematics & Astronomy, D.J.I.C.R. (Hastinapur) 1985-95-99

Received - January 99

समाज की प्रतिभा श्री नितिन जैन द्वारा निर्मित

कुन्दकुन्द रोबोट

विज्ञान एवं तकनीकी क्रांति के इस युग में ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में जैन समाज की प्रतिभाओं का योगदान सर्वविदित है तथापि हम यहाँ एक विशिष्ट प्रतिभा एवं उनके द्वारा विकसित अद्वितीय रोबोट का परिचय दे रहे हैं। रामपुर मनिहारान (सहारनपुर) निवासी श्री व्ही. के. जैन के चिरंजीव नितिन जैन ने अपने इस बहु उपयोगी आविष्कार को जैन धर्म की मूल परम्परा के सर्वप्रमुख आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य को समर्पित करते हुए इसका नाम ***कुन्दकुन्द रोबोट*** *रखा है। — सम्पादक*

सहारनपुर के गोचर कृषि इंटर कालेज से बारहवीं कक्षा में उत्तीर्ण हुए नितिन जैन द्वारा निर्मित अनेक खूबियों से भरा हुआ 'कुन्दकुन्द रोबोट' विलक्षण प्रतिभा का प्रतीक है। नितिन जैन का कहना है कि 9 वीं कक्षा में ही उसने इस रोबोट को बनाने की शुरूआत कर दी थी। लगभग ढाई वर्षों के अथक प्रयास के बाद यह पूरी तरह बनकर तैयार हुआ। यह रोबोट वास्तव में दूर से नियंत्रित प्रणाली यानी रिमोट सिस्टम द्वारा काफी दूर तक भी जा सकता है और अवरोध आने की स्थिति में स्वत: ही रूक भी जाता है। यह स्वतंत्र रूप से हाथ एवं गर्दन घुमाता है। यह भी दूर से नियंत्रित अलग प्रणाली है। एक मजबूत फाइबर शीट (41 X 37 सेंटीमीटर) द्वारा यह रोबोट बनाया गया है। इसकी ऊंचाई 85 सेंटीमीटर है। 15 किलोग्राम तक भार ले जाने में यह सक्षम है। इस रोबोट की सभी क्रियाएं अलग-अलग आवृत्ति की रेडियो प्रणाली द्वारा लगभग 40-50 फीट दूरी से नियंत्रित है। इसमें लगी पत्र-पेटी में पत्र डालने पर पत्र आने की सूचना यह तुरन्त हमें देता है। इस प्रकार हमें यह डाकिए के आने के इंतजार से बचाता है। वर्षा होने की स्थिति में अलार्म द्वारा वर्षा की सूचना हमें देता है। कहीं पर आस-पास आग लगते ही फायर अलार्म बजाकर हमें सावधान करता है तथा इसमें लगा पंखा आग बुझाने के लिए स्वयं चलने लगता है। आग बुझने के पश्चात् पंखा व अलार्म स्वयं बन्द हो जाते है।

सिगरेट से व अन्य प्रकार का धुंआ होने की स्थिति में यह अपनी स्वचालित प्रणाली द्वारा खासकर 'नो स्मोकिंग' कह कर हमें धूम्रपान के प्रति सचेत करता है। यह रोबोट एक बहुत ही अच्छा सुरक्षा गार्ड भी है। यह किसी भी प्रकार के समारोह आदि में प्रवेश द्वार पर खड़ा होकर अन्दर जाने वाले व्यक्तियों की सही गणना करता है एवं बोलकर बताता है तथा इसमें लगी स्क्रीन पर उस गणना को भी दर्शाता है। इसके हाथ में धातु सूचक यानी मेटल डिटेक्टर देने पर अन्दर जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति की जांच-पड़ताल करता है। यह रोबोट जमीन में दबी बारूदी सुरंगों की सूचना भी दे सकता है तथा उन्हें हटाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। साथ ही इसे दुश्मन के इलाके में भेजकर व इसमें विस्फोटक पदार्थ रखकर दुश्मन के महत्वपूर्ण ठिकाने को यह दूर से नियंत्रित प्रणाली द्वारा नष्ट कर सकता है। इतना ही नहीं हमारे द्वारा 30 फुट दूरी तक से की गई बात को भी यह सुन सकता है तथा इस प्रकार हमारा मनोरंजन करता है। रात में इसे प्रवेश द्वार पर खड़ा कर देने पर यह हमें रात में किसी भी व्यक्ति के आने की सूचना देता है, इस प्रकार हमारे घरों की रक्षा कर सकता है। यह रोबोट केवल मशीन ही नहीं बल्कि एक जवां दिल भी रखता है। यदि कोई इसके सामने सीटी मार दे तो यह कह उठता है आई लव यू। इसका दूसरा रूप भी है जिसमें यह भावुक हो जाता है। यदि आप उसके सिर पर चोट मारेंगे तो यह बच्चों की तरह रोने लगता है। ताली बजाने पर हंसने लगता है। हाथ मिलाने पर यह रोबोट आपके स्वागत में आप पर इत्र छिड़क कर बोलता है 'मे आई हेल्प यू' यानी मैं आपकी क्या मदद कर

सकता हूँ? यह एक अच्छा घरेलू साथी भी है, घर में सफाई व पानी द्वारा पौधा भी रिमोट कन्ट्रोल प्रणाली द्वारा लगाता है। इस प्रकार सफाई करने के लिए अस्पतालों, घरों आदि में यह सहायता कर सकता है। यह केबिन में बैठे डाक्टर की सेवा कर सकता है। डाक्टर की बातचीत वहीं से लगभग 100 फुट की दूरी पर बेड पर लेटे मरीज से कराने में यह सक्षम है। इसके साथ ही यह मरीज का मनोरंजन भी कर सकता है। इच्छा होने पर यह तुरंत चाय या कॉफी भी बनाकर पेश करेगा। अपने सिर में लगे कैमरे द्वारा किसी भी कोने, दुर्गम स्थान या दुश्मन के क्षेत्र, जहां हमारा जौना संभव नहीं है, वहां यह रोबोट अपनी अलग रिमोट कंट्रोल प्रणाली द्वारा किसी भी प्रकार के फोटो खींचता है। यह दुश्मन के इलाके या अन्य किसी स्थान पर होने वाली गुप्त वार्तालाप को भी हमें सुनाता है या हम कह सकते हैं कि यह एक अच्छा जासूस भी है। इसमें अपने इस्तेमाल के अनुसार छोटे-छोटे परिवर्तन कर इसके उपयोगों को आवश्यकतानुसार और अधिक विकसित किया जा सकता है।

कुन्दकुन्द रोबोट कैल्शियम कार्बोनेट तथा अन्य खनिज पदार्थों की अशुद्धियों को दूर कर भारी पानी को पीने योग्य शुद्ध पानी में बदल देता है। यह क्रिया बिना किसी रसायन को प्रयोग में लाए ही करता है। इस प्रकार यह हमारे स्वास्थ्य की रक्षा करने में भी सक्षम है। एक अच्छा खासा आकर्षण का केन्द्र भी है यही अपनी सुन्दर प्रकाश व्यवस्था एवं सुन्दर मानव आकृति के कारण यह सबको आकर्षित कर मनोरंजन करता है। यह रोबोट किसान के लिए भी विशेष उपयोगी है। खेत में स्वयं सिंचाई करता है तथा मिट्टी में आवश्यक नमी आ जाने के बाद पंप के मोटर को बन्द करता है। इस प्रकार यह किसान का अच्छा मित्र साबित हो सकता है। यह रोबोट जहां भी रखा जाता है उस कमरे से मच्छर स्वयं ही भाग जाते है क्योंकि यह पराश्रव्य किरणों को छोड़ता है जो कि सभी प्रकार के मच्छरों में भय उत्पन्न कर उन्हें कमरे से बाहर भागने पर विवश कर देती हैं। किन्हीं विशेष स्थानों जैसे बैंक, संग्रहालय, महत्वपूर्ण प्रयोगशाला स्थल एवं अन्य स्थानों पर रात्रि में यदि इस रोबोट की विशेष सुरक्षा व्यवस्था को चालू करके छोड़ दें तो चोर या अवांछित व्यक्ति के अन्दर प्रवेश के प्रयत्न पर यह रोबोट उस पर बम, आंसू गैस, राकेट या किसी भी विस्फोटक से हमला करने में पूर्णत: सक्षम है। इस प्रकार होने वाली संभावित चोरी को वह रोकता है तथा उस व्यक्ति को घायल कर, खत्म कर या बेहोश कर पकड़वाता है। **इस रोबोट का नाम कुन्दकुन्द आचार्य के सम्मान में रखा गया है जो कि आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व जन्में भारत के एक महान जैन आचार्य व दार्शनिक होने के साथ-साथ एक महान वैज्ञानिक भी थे।** ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, द्रव्य के विषय में उनके मूल सिद्धांत अनेक वैज्ञानिक उथल-पुथल के बाद आज के आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धांतों से पूर्णत: मेल खाते हैं और उनका साहित्य एक खोज का विषय है।

नितिन जैन द्वारा निर्मित इस कुन्दकुन्द रोबोट को विभिन्न विज्ञान प्रदर्शनियों में पुरस्कृत किया जा चुका है। जो भी हो यह तो स्पष्ट है कि नितिन जैन ने जो अद्भुत कार्य कर दिखाया है उसके लिए वह बधाई का पात्र है। अन्य बच्चों को भी इससे सबक सीखना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि नितिन जैन ने जो कार्य किया वह हम क्यों नहीं कर सकते? यदि बच्चों में ऐसी विचारधारा पनपेगी तो निश्चिय ही हमारा देश भविष्य में उस शिखर पर होगा जहां हमें कोई छू नहीं सकेगा। अधिक जानकारी के लिये सम्पर्क करें -

श्री नितिन जैन पिता श्री वी. के. जैन
12/58, पीरजाद्गन,
रामपुर मनिहारन,
सहारनपुर - 247451 (उ.प्र.)

(विज्ञान प्रगति, दिल्ली (नव. 99) के आधार पर)

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

उड़ीसा के सराक चक्रवाती विभीषिका के शिकार

■ अभयप्रकाश जैन*

उड़ीसा के सराक भगवान आदिनाथ (ऋषभ) के नाम पर अपने गाँव के नाम आदिदेव, आदिमूरि, आदिलोक रखते हैं। कपड़े बनाने, रंगनें का काम करने के कारण रंगिया भी कहलाते हैं, कुछ लोग उन्हें रंगणी भी कहते हैं। चौधरी, साहू, मांझी, तटिवा इनके उपनाम हैं। 10 दिसम्बर से 20 दिसम्बर 99 के मध्य की गई उड़ीसा क्षेत्र की यात्रा तथा पीड़ितों के मध्य रहने से निम्न तथ्य सामने आये हैं जो दिल दहलाने वाले हैं। क्या जैन समाज का ध्यान इस ओर जायेगा?

हादसों के बीच जीना सराक बन्धुओं की सदैव नियति रही है। घोर विपदा के क्षणों में भी इस जाति ने समाज के सिद्धान्तों को व्यक्तित्व के सहज स्वरूप के सौन्दर्य के रूप में अक्षुण्ण रखा है। यात्रा ग्वालियर से चलकर कटक तक पहुँची फिर एस. के. महापात्र I.P.S. के तत्वावधान में सर्वेक्षण सहायता की मुहिम की गई। जगतसिंहपुर, जसपुर, केन्द्रापारा, वालासूर, खुदी, कन्दरपुर, पारादीप, कुजंग, पंचायन, पन्णुआ, पटिलो नगरों कस्बों के दौरे में पाया गया कि लगभग 20 जैन मन्दिर नेस्तनाबूद हो गये हैं, उनका नामोनिशान भी नहीं बचा है; मूर्तियाँ अनेक स्थानों पर इकट्ठी कर दी गई हैं। सराक भाइयों की अकल्पनीय हादसे से दर्दनाक स्थिति हो चुकी है। न वे जीवित रहने लायक हैं और न ही मरने के लायक। वे साक्षात जीती जागती लाशें बन गये हैं। 48 घंटे की उस चक्रवाती विनाश लीला ने उड़ीसा के उन 12 तटवर्ती जिलों को पाट लेने की कोशिश की जो उडीसा के अन्नदाता और कपड़ादाता थे। इस किस्म के हादसे के बाद अभी एक-डेढ़ महीना ही बीता है और हम पूछने लगे हैं कि हम कब तक उड़ीसा को रोयें। ऐसा पूछने वाले भूल जाते हैं कि हम एक ऐसी अभागी परिस्थिति के बीच रह रहे हैं जिसमें हमारे सराक भाई जो उड़ीसा में रह रहे हैं, उनका स्थाई भाव है, अपनी नियति से बराबर लड़ना है। हमारा देश और खास तौर पर उड़ीसा दुनिया के सबसे अधिक हादसों से घिरा रहने वाला क्षेत्र है इसमें सभी प्रकार के हादसे सदैव से शामिल रहे हैं - प्राकृतिक, इन्सानी, साम्प्रदायिक तथाकथित विकासकृत - महामारी, आतंकवादी आदि आदि। हमारा उड़ीसा का 2516 कि. मी. तटीय हिस्सा भयंकर तूफान का क्रीड़ास्थल बन गया है। अनगिनत पशुओं और पक्षियों की लाशें बिखरी पड़ी हैं। समुद्री मछलियाँ भी विषाक्त हो गई हैं, उनके पेट से मानव हड्डियाँ अंगूठे, उंगलियाँ तक निकल रहे हैं। मकान बनाने के लिये ईंटें नहीं हैं, न ही बन पा रही हैं। लोग अपने घर बनने की राह देख रहे हैं और जिसे जिस शहर की जिस फुटपाथ पर जगह मिल पा रही है वह उधर ही निकलने की ताक में है। इस हादसे ने तथा बदइंतजामी ने आदमी को फुटपाथी मात्र बना दिया है।

उड़ीसा के तूफान में बात दब गई (या दबा दी गई), वह यह है कि समुद्र जब 50 फुट ऊँचा उठा और 20-25 कि.मी. तक के हिस्से को पोंछता हुआ चला गया तो उसमें सबसे ज्यादा मौतें उनकी हुईं जो गैरकानूनी ढ़ंग से बंगलादेश से आकर चोरी से समुद्री मछलियों का शिकार करके बेचते थे। इस समुदाय ने समुद्री पर्यावरण को क्षति पहुँचाई और समूचे समुद्र की मछलियाँ साफ कर दीं। इन्हीं लोगों ने सागर किनारे के समुद्री जंगल और खास किस्म की घास की घनी दीवारों को भी साफ कर दिया था जिसका सीधा परिणाम तूफान की इस कदर विकरालता के रूप में हमारे सामने आया। उड़ीसा की सरकार व अधिकारी इस तथ्य को छिपा रहे हैं। बंगाली टोला के लगभग

60,000 लोग मारे गये हैं। यह मनुष्यकृत हादसा है जिसमें हम मनुष्य को ही अस्तित्वहीन कर देते हैं। उड़ीसा के तूफान से जो क्षेत्र वीरान और क्षत्-विक्षत् हुआ है सबसे अधिक अन्न उत्पादन वाला क्षेत्र है। अब सराक जैन खेती करने वाले समुदाय के सामने संकट खड़ा है कि खारे पानी से भर गये खेतों में अगली फसल होगी कि नहीं और होगी तो कब? वर्तमान तो मटियामेट हुआ ही है यह भविष्य में आने वाली भूखमरी का संकेत है। इसी संकट का दूसरा पहलू और चेहरा यह है कि खेतों में सहायक होने वाले 5 लाख से ज्यादा पशु मर गये हैं। किसान की तो मानों कमर ही टूट गई है। गाय, बैलों, भैंसों की बड़ी संख्या की उड़ीसा को जरूरत है लेकिन भयानक सच्चाई यह है कि देश में ही गाय, बैलों की संख्या इस कदर गिरी हुई है कि आप चाहकर भी उड़ीसा की मदद नहीं कर सकेंगे। थोड़ी सी विदेशी मुद्रा कमाने के चक्कर और लालच में गाय बैलों की एकदम अन्धाधुंध कटाई चल रही है और भारतीय संस्कृति में हर समय सांस लेने वाली सरकार तथा हमारी सोच ही कत्लखानों में इन जीवनोपयोगी जानवरों की कटाई कम नहीं कर पा रही है वरन सैकड़ों नये-नये आधुनिक कत्लखानें खोलने की निरन्तर तैयारी कर रहे हैं। एक आसन्न हादसा हमारे सामने खड़ा है कि जब खेती का हमारा आर्खिक ढ़ांचा ही टूट जायेगा तब यह हादसा कई उड़ीसाओं से भी ज्यादा भयानक होगा। हादसों के पीछे जो बच जाता है वो क्या है?

हादसों के बाद सिर्फ वही नहीं बचता जिसकी तस्वीरें हम देखते हैं और जिसकी खबरें हम सुनते हैं या अखबारों में पढ़ते हैं। हादसों के बाद टूटा हुआ तन व मन से टूटा हुआ समूह रहता है जिसमें अपने पुराने जीवन का मकान, सामाजिक स्तर और पारिवारिक स्तर तक पहुँचने की क्षमता ही नहीं रह जाती है। सराक भाइयों की बेवक्त दुर्दशा की यही कहानी है जिसकी समूची जैन समाज अनदेखी कर रही है। राहत का काम इसी नजरिये से किया जाता है कि जैसे-तैसे लोगों को बसा दिया जाये और हादसे की पहचानों को धो पोंछ दिया जाये। परिणाम अभी मैंने अपनी आंखों से देखे हैं, जिनके घर पक्के थे वे झोपड़ियों में और जो मकान या झोपड़ियों में थे वे प्लास्टिक के परदों में सिमट गये हैं। उनके टूटे मन में उससे बाहर निकलने की शक्ति या उत्साह ही नहीं बचा है। लोग अपने मकान को भी साफ नहीं कर रहे हैं क्योंकि अगर मलवा साफ कर दिया गया तो जब सरकारी आदमी नुकसान का आकलन करने आयेगा तो कोई मुआवजा नहीं मिलेगा। यह स्थिति एक पराजित मनोभूमिका है जो व्यक्तिशः, समूहतः लोगों की संकल्प शक्ति तोड़ रही है।

हादसों की एक मनौवैज्ञानिक क्षति भी होती है जो इतनी बड़ी होती है कि उसे संभालने के लिये भी हादसे से निपटना जैसा ही कार्य है। यह राहत बांटकर वापिस आ जाने का काम नहीं है, यह तो स्वयं ही अपने साधर्मी भाइयों की स्वयं राहत बनकर तकलीफ में पड़े लोगों के बीच रहने का सवाल है। उड़ीसा के अपने सराक भाइयों की कराहें/सिसकियाँ क्या हम तक पहुँच रही हैं? क्या उड़ीसा के हादसे से हम कुछ सिखने का प्रयास करेंगे?

पिछले साल हमने खारवेल महोत्सव भुवनेश्वर में राष्ट्रीय स्तर पर मनाया। बड़े-बड़े जलसे, संगोष्ठियाँ हुई लेकिन आज जब वहीं की जैन विरासत, स्थापत्य, जैन मन्दिर और उस संस्कृति के वाहक सराक अपनी अस्मिता को संजोकर रखने में असफल हो रहे हैं और लाशों जैसी जिंदगी जीने को मजबूर हैं तो इस समाज का क्या फर्ज है? ऋषभदेव की कृषि करने की सीख पर चलने वाले आज सड़क की पटरी पर खड़े हैं। आइये! हम सब मिलकर अपने भाइयों की पीड़ा में सहभागी बनें।

* एन - 14, चेतकपुरी, **ग्वालियर** - 474 009

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

कुछ विचारणीय बिन्दु

■ अनिलकुमार जैन*

(1) भगवान ऋषभदेव तथा भगवान शिव -

''प्रमाण उपलब्ध हैं जो बताते हैं कि बहुत पहले से ही ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से ही, ऐसे लोग थे जो प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की उपासना करते थे। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं कि वर्द्धमान अथवा पार्श्वनाथ से पूर्व से ही जैन धर्म प्रचलित था। यजुर्वेद में ऋषभ, अजितनाथ एवं अरिष्टनेमि तीन तीर्थंकरों के नाम उल्लेखित हैं। भागवद् पुराण इस विचार का समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैन धर्म के प्रवर्तक थे।''

ये विचार हैं डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के। जैन ग्रन्थों में ऋषभदेव के बारे में विस्तृत वर्णन मिलता है। वह चौदहवें कुलकर या मनु नाभिराय के पुत्र थे। ऋषभदेव ने कर्मभूमि की स्थापना की और मानव सभ्यता और संस्कृति का सूत्रपात किया। उन्होंने अहिंसा धर्म की स्थापना की तथा मोक्ष जाने का मार्ग बताया। भगवान ऋषभदेव ने तिब्बत में स्थित कैलाश पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया। भगवान ऋषभदेव का लांछन (चिह्न) वृषभ या नन्दी था।

प्राचीन हिन्दू पुराणों में ऋषभदेव को रूद्र या शिव के रूप में प्रस्तुत किया गया है। शैव सम्प्रदाय के लिंग-पुराण तथा वायु पुराण में उन्हें सभी क्षत्रिय राजाओं का पूर्वज बतलाया गया है। सर जॉन मार्शल का मानना है कि वैदिक आर्यों में शिव पूजा प्रचलित थी इसके प्रमाण सिन्धु घाटी की सभ्यता के अवशेषों से प्राप्त होते हैं। वहाँ से कई सील ऐसी मिली हैं जिसमें नग्न योगी कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं तथा साथ में वृषभ भी खड़ा है जो कि ऋषभदेव का लांछन (चिह्न) है। सर जॉन मार्शल के अनुसार ये योगी कोई और नहीं बल्कि जैन तीर्थंकर ऋषभदेव हैं।[1] इस प्रकार भगवान ऋषभदेव की प्राचीनता एवं ऐतिहासिकता निर्विवाद है।

यहाँ एक विशेष बात यह सोचने की है कि क्या जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव तथा हिन्दूओं के भगवान शिव एक ही हैं? भगवान ऋषभदेव एवं भगवान शिव दोनों ने कैलाश पर्वत को अपनी साधना स्थली बनाई। भगवान ऋषभदेव का लांछन वृषभ है तो इधर भगवान शिव का वाहन भी वृषभ या नन्दी है। भगवान ऋषभदेव नग्न दिगम्बर थे तो भगवान शिव भी रूद्र रूप दिगम्बर थे। भगवान ऋषभदेव तीन गुणों (सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चारित्र) के धारक थे तो भगवान शिव भी त्रिशूल के धारक थे। इन सब बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषभदेव तथा शिव दोनों एक ही रहे हैं, कालान्तर में इन्हें दो अलग व्यक्तित्व के रूप में माना जाने लगा। इस बिन्दु पर व्यापक शोध अपेक्षित है।

(2) भगवान अजितनाथ तथा गणेशजी

जिस प्रकार भगवान ऋषभदेव तथा भगवान शिव में साम्य नजर आता है, उसी प्रकार का कुछ साम्य दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ तथा हिन्दू देवता गणपति या गणेशजी में भी लगता है। शिवजी के अनुयायियों को संयुक्त रूप से 'गण' कहा जाता है तथा 'गण' के अधिपति को गणपति या गणेश कहा जाता है। गणेश का मुख हाथी के आकार का दिखाया जाता है।

इधर जैनों में भगवान ऋषभदेव के अनुयायी साधुओं के समुदाय को गण कहा

जाता है तथा इनके जो प्रमुख थे उन्हें गणधर कहा जाता है। यूँ तो प्रत्येक तीर्थंकर के समोशरण (धर्म सभा) में गणधर अवश्य होते हैं लेकिन भगवान ऋषभदेव के साथ संभवतया थोड़ा अलग रहा है। उनके समोशरण में प्रथम गणधर वृषभसेन थे। लगता है कि उनके निर्वाण को प्राप्त होने के बाद भी गणधर पद प्रचलित रहता आया। प्रत्येक वह जो भगवान ऋषभदेव द्वारा स्थापित अहिंसा धर्म का नेतृत्व करता था, गणधर या गणपति कहलाता था। इसी परम्परा में अजितनाथ को भी गणधर या गणपति के रूप में हिन्दुओं में भी स्थापित कर लिये गया होगा। इतना अन्तर अवश्य आ गया कि जहाँ तीर्थंकर अजितनाथ का चिह्न या लांछन हाथी है, वहीं हिन्दुओं में गणपति या गणेशजी का मुख ही हाथी के समान मान लिया गया है। इस संभावना को टटोलना अपेक्षित है। इससे नये साम्य प्रगट हो सकते हैं।

(3) फतेहपुर सीकरी से प्राप्त आदिनाथ की मूर्ति

सामान्यत: यह माना जाता है कि आगरा के निकट स्थित फतेहपुर सीकरी को सम्राट अकबर ने बसाया था। लेकिन दिसम्बर' 99 के उत्तरार्द्ध में वहाँ उत्खनन से प्राप्त अनेकों (संभवत: 26) जैन मूर्तियों ने इस मान्यता को गलत सिद्ध कर दिया है। ये सभी मूर्तियाँ ईसा की दसवीं - बारहवीं शताब्दी के मध्य की हैं। प्राय: सभी मूर्तियाँ खण्डित तथा अपूर्ण है। इन सभी मूर्तियों में से मात्र एक मूर्ति लगभग पूरी है और वह है भगवान ऋषभदेव की। यह मूर्ति छह फुट ऊँची है तथा इस पर संवत् 1029 अंकित है। यह मूर्ति भी दो टुकड़ों में है, लेकिन इसे जोड़कर पूर्ण किया जा सकता है। प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ये अधिकांश मूर्तियाँ श्वेताम्बर आम्नाय से सम्बन्धित हैं। वहाँ पर श्वेताम्बर आम्नाय के लोग ही पहुँचे हैं। लेकिन हमारा मानना है कि इस प्रकार के कार्यों में दिगम्बरों को भी वहाँ जाना चाहिये तथा पूरी रूचि लेनी चाहिये। संभव है कि वहाँ कहीं दिगम्बर मूर्तियाँ भी प्राप्त हों। फिर जैन संस्कृति तो हम सभी की है।

एक बात यह हैरानी की अवश्य है कि इतनी खण्डित मूर्तियाँ तो एक साथ मिलीं लेकिन कहीं भी किसी मन्दिर के अवशेष नहीं मिले। अत: यह एक गहन अध्ययन का विषय बन गया है।

सन्दर्भ -

1. 'Spiritual Affinities in Rishabha & Shiva', by Bal Patil, Times of India, Ahmedabad, 30.12.99)

* बी - 36, सूर्यनारायण सोसायटी,
विसत पेट्रोल पम्प के सामने,
साबरमती, **अहमदाबाद** - 380 005

भगवान ऋषभदेव अन्तरराष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष

4 फरवरी 2000 से फरवरी 2001

के अन्तर्गत

ऋषभ जयन्ती

चैत्र कृष्णा नवमीं, 29 मार्च 2000

उत्साहपूर्वक मनायें।

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

आचार्य जिनदत्त सूरि

■ अनिलकुमार जैन*

आचार्य जिनदत्त सूरि श्वेताम्बर जैन परम्परा में खतरगच्छ के एक प्रभावक आचार्य हुए हैं। कहते हैं कि इन्होंने एक लाख तीस हजार लोगों को जैन बनाया। आचार्यश्री का जन्म संवत् 1132 में गुजरात में अहमदाबाद के निकट 'धौलका' ग्राम में हुआ था। उन्होंने मात्र नौ वर्ष की आयु में संवत् 1141 में मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली थी। बाद में उन्हें राजस्थान के चित्तौड़ नगर में आचार्य पद से विभूषित किया गया। उन्होंने धर्म प्रचार का बहुत कार्य किया। अपने अंतिम समय में वे अजमेर आ गये तथा वहीं संवत् 1212 में इनका देहावसान हो गया।

खतरगच्छ श्वेताम्बर जैन समाज में आचार्यश्री के अंतिम समय की एक चमत्कारी घटना बहुत प्रसिद्ध है। लोगों का कहना है कि जब आचार्य श्री का पार्थिव शरीर अग्नि को समर्पित किया गया तो एक आश्चर्यजनक घटना घटी। उनका पार्थिव शरीर तो पूरा जल गया लेकिन उनके शरीर पर जो चादर, चोलपट्टा तथा मुँहपट्टी थे, वे तीनों जलने से बच गये। बाद में उनके अनुयायी इन तीनों वस्तुओं को जैसलमेर ले गये। ये तीनों वस्तुएँ जैसलमेर दुर्ग में स्थित 'जिन ज्ञान भंडार' में सुरक्षित हैं।

इस जानकारी ने एक जिज्ञासा पैदा कर दी है कि क्या कपड़े की वस्तुएँ जलने से बच सकती हैं? वैज्ञानिक तौर पर सोचा जाये तो ऐसा होने असम्भव है। इस बात की चर्चा तपागच्छीय श्वे. जैन मुनि श्री नन्दीघोष विजय गणिजी से भी की। उनका ऐसा अनुमान है कि आचार्य श्री जिनदत्तजी के पार्थिव शरीर को अग्नि को समर्पित करने से पहले शरीर से पुरानी चादर, चोलपट्टा तथा मुँहपट्टी को हटाकर नयी चादर, चोलपट्टा और मुँहपट्टी पहनाई गई होगी। तथा जो ये पुरानी वस्तुएँ थीं, उन्हीं को जैसलमेर में रखा गया होगा। बाद में यह कहा जाने लगा कि ये तीनों वस्तुएँ जलने से बच गयीं।

लेकिन मुझे एक अन्य संभावना प्रतीत हो रही है। हो सकता है कि आचार्य श्री ने अंतिम समय में सल्लेखना धारण करने के साथ ही बाह्य परिग्रह चादर आदि का परित्याग कर दिया होगा तथा नग्न दिगम्बर वेश धारण कर लिया हो। यह एक खोज व शोध की बात प्रतीत होती है कि क्या प्राचीन काल में सल्लेखना के समय श्वेताम्बर मुनि वस्त्र परित्याग कर देते थे? और यदि ऐसा करते थे तो यह परम्परा कब तक रही?

* बी - 36, सूर्यनारायण सोसायटी,
विसत पेट्रोल पम्प के सामने,
साबरमती, **अहमदाबाद** - 380 005

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

निगोदिया जीव

■ सुल्तानसिंह जैन*

'आस्था एवं अन्वेषण'[1] के उल्लेखानुसार ''जैन धर्म के अनुसार यदि जीव अपनी शारीरिक संरचना पूर्ण करने में सक्षम होता है तो उसे पर्याप्तक कहते हैं और जब वह शारीरिक संरचना पूर्ण करने की क्षमता से रहित होता है और शारीरिक संरचना के पूर्व ही मर जाता है तब उसे लब्धपर्याप्तक कहते हैं। निगोदिया जीव पर्याप्तक और लब्धपर्याप्तक दोनों प्रकार के होते हैं''

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जो निगोदिया जीव शारीरिक संरचना पूर्ण होने से पूर्व ही मर जाता है उसे जीव कैसे मान लिया गया है? संसार का हर जीव भले ही वह सम्मूर्च्छन युक्ति से उत्पन्न क्यों न हुआ हो, अपनी पूर्ण संरचना में ही जीव है, इससे पूर्व वह मरता नहीं है, अपितु अपने विभिन्न रूपों से गुजरता हुआ पूर्णता को प्राप्त करता है। जैसे मेंढ़क के भ्रूण के पश्चात उसका जीव विभिन्न आकृतियों में होता हुआ, जिनमें एक छोटी मछली जैसी भी आकृति है, अपनी पूर्ण शारीरिक संरचना को प्राप्त करता है। यदि पूर्ण शारीरिक संरचना तक पहुँचने से पूर्व ही वह किन्हीं कारणों से मर जाता है तो जीव सन्दर्भ में यह सैद्धान्तिक तर्क नहीं है।

अक्टूबर 99 के 'स्वानुभूति प्रकाश' पत्रिका के पृष्ठ 2 पर श्री कानजी स्वामी के प्रवचन (दि. 7.6.78) के अनुसार 'निगोदिया जीव एक श्वास में 18 भव धारण करता है'।

जबकि 'आस्था और अन्वेषण'[2] में डॉ. अशोककुमार जैन (रीडर - वनस्पति विभाग, जीवाजी वि.वि., ग्वालियर - म.प्र.) ने विचार व्यक्त किया है कि 'सामान्यत: यह प्रचलित है कि निगोदिया जीव एक श्वास में अठारह बार जन्म - मरण करता है, जो ठीक नहीं है।'

उपरोक्त विचारों में किसे सही मानें, यह एक प्रश्न चिन्ह है। कृपया विद्वान इसका स्पष्टीकरण करें।

सन्दर्भ

1. आस्था एवं अन्वेषण, सम्पादक - सुरेश जैन I.A.S., भोपाल, अप्रैल - 99, पृ. 13
2. वही

* वैज्ञानिक
767, वेस्ट अम्बर तालाब,
रूढ़की - 247 667

राष्ट्र की धड़कनों की अभिव्यक्ति
नवभारत टाइम्स

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

मथुरा के जैन स्तूप व कंकाली का सांस्कृतिक वैभव

द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी, अजमेर, 15 - 16 अक्टूबर 1999

■ **विजयकुमार जैन शास्त्री** *

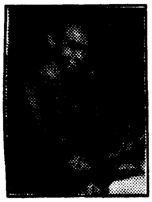

परम पूज्य, सराकोद्धारक संत, उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज एवं मुनि श्री वैराग्यसागरजी महाराज के पावन सान्निध्य तथा डा. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी', वाराणसी के संयोजकत्व में 15 - 16 अक्टूबर 99 के मध्य जैन भवन, केशरगंज - अजमेर में 'मथुरा के जैन स्तूप एवं कंकाली टीका का सांस्कृतिक वैभव' शीर्षक द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्पन्न हुई। प्रख्यात पुराविद डा रमेशचन्द्र शर्मा, वाराणसी संगोष्ठी के परामर्शदाता थे। संगोष्ठी की कार्यवाही का संक्षिप्त विवरण न्मिनवत् है -

प्रथम उद्घाटन सत्र - दिनांक 15.10.99, प्रात: 9.00 बजे

मंगलाचरण (प्राकृत)	:	**डा. कमलेश जैन**, वाराणसी
अध्यक्षता	:	**प्रो. रमेशचन्द्र शर्मा**, निदेशक - भारत कला भवन, वाराणसी
मुख्य अतिथि	:	**डॉ. पी. एल. चतुर्वेदी**, कुलपति - दयानन्द सरस्वती वि.वि., अजमेर
संचालन	:	**प्रो. सुशील पाटनी**, अजमेर

प्रथम सत्र के आदि में अजमेर समाज के अध्यक्ष श्री माणकचन्दजी गदिया द्वारा समागत विद्वानों का सम्मान किया गया। संगोष्ठी संयोजक **डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी'** द्वारा मथुरा की सांस्कृतिक धरोहर से सम्बन्धित गोष्ठी का महत्व प्रतिपादित किया। गोष्ठी के परामर्शक एवं भारत कला भवन, काशी हिन्दू वि.वि. के निदेशक प्रो. रमेशचन्द्र शर्मा ने विषय प्रवर्तन करते हुए ब्रज का प्राचीन जैन तीर्थ - कंकाली स्थल पर सुविस्तृत आलेख प्रस्तुत किया। उद्घाटन सत्र के अन्त में परम पूज्य उपाध्याय श्री ने मंगल उद्बोधन में मथुरा के सांस्कृतिक वैभव पर प्रकाश डालते हुए बताया कि यहाँ लगभग 700 जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यह वही पवित्र स्थान है जहाँ अन्तिम केवली जम्बू स्वामी के चरणों में बैठकर 500 - 500 डाकुओं ने प्रायश्चित पूर्वक सन्मार्ग ग्रहण किया था। अन्त में पूज्य उपाध्यायश्री के चरण सान्निध्य में मथुरा के सांस्कृतिक वैभव से सम्बन्धित डा. चतुर्वेदी ने एक चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन किया।

द्वितीय सत्र - दिनांक 15.10.99, दोपहर 2.00 बजे

अध्यक्षता	:	**डा. रतनचन्द्र जैन अग्रवाल**, जयपुर
मंगलाचरण	:	**ब्र. अनीता बहनजी**, संघस्थ
संचालन	:	**प्रो. रमेशचन्द्रजी शर्मा**, वाराणसी
आलेख वाचन	:	**डॉ. शैलेन्द्रकुमार रस्तोगी**, लखनऊ,
		'मथुरा के कंकाली टीले से भिन्न जैन स्थलों का परिचय'
		श्री क्रान्तिकुमार, सारनाथ, वाराणसी,
		'मथुरा के शिला एवं मूर्ति लेखों के सन्दर्भ में जैन समाज'
		डा. ए. एल. श्रीवास्तव, लखनऊ (प्रतिनिधि द्वारा)
		'प्राचीन जैन मंगल चिह्न'
		डा. वी. के. शर्मा, मथुरा
		'मध्यकाल में जैन धर्म'

अन्त में पूज्य उपाध्यायश्री ने अपने मंगल उद्बोधन में बताया कि समाज को

सांस्कृतिक कार्यक्रम में रूचि रखने की अपेक्षा अपने पुरातात्विक स्थलों की सुरक्षा में अधिक रूचि रखना चाहिये। रात्रि में मथुरा में प्राचीन काल में आयोजित होने वाले **कौमुदी महोत्सव** की तर्ज पर सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए।

तृतीय सत्र - दिनांक 16.10.99, प्रातः 8.30 बजे

मंगल गान	:	**श्री सुरेन्द्रकुमार**, पनगसिया
संचालन	:	**प्रो. रमेशचन्द्र शर्मा**, वाराणसी
आलेख वाचन	:	**डा. फूलचन्द्र प्रेमी**, अध्यक्ष - जैनदर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि.वि., वाराणसी *'मथुरा का सुप्रसिद्ध सरस्वती आन्दोलन और उसका प्रभाव'*

कुमार अनेकान्त जैन, जैन विश्व भारती वि.वि., लाडनूँ ने प्राकृत को NET परीक्षा से हटाये जाने के विरोध में प्रस्ताव रखा तथा **डा. रतनचन्द्र अग्रवाल**, जयपुर ने उस पर विमर्श कराया।

पूज्य उपाध्याय श्री ने अपने उद्बोधन में पुरातत्व की रक्षा हेतु सोने से जगाया तथा अन्तर्राष्ट्रीय गिरोहों द्वारा मूर्तियों की चोरी की ओर संकेत किया। नये मन्दिर निर्माण की अपेक्षा अपनी पुरानी सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा को अधिक आवश्यक बताया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं को पाठ्यक्रम में आवश्यक स्थान देने को प्रेरित किया।

चतुर्थ सत्र - दिनांक 16.10.99, दोपहर 1.30 बजे

मुख्य अतिथि	:	**डा. लक्ष्मणसिहजी राठौर**, कुलपति - जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
मंगलाचरण	:	**श्री निहालचन्द बड़जात्या,** पूर्व प्राचार्य
संचालन	:	**प्रो. रमेशचन्द्र शर्मा,** वाराणसी
आलेख वाचन	:	डा. हरिहरसिंह (प्रतिनिधि द्वारा) *'मथुरा के स्तूपों के वेदिका स्तम्भ'* **डा. शिवदयाल त्रिवेदी,** लखनऊ *'मथुरा में स्तूप का सूत्रपात'* **डा. जितेन्द्रकुमार,** निदेशक - राजकीय संग्रहालय, मथुरा *'गुप्तकालीन जैन मूर्तियाँ'*

अपने मंगल उद्बोधन में उपाध्यायश्री ने छात्रों को पुरातत्त्व विषय में रूचि रखने की प्रेरणा दी। शिक्षा पद्धति में व्यसन मुक्ति, शाकाहार तथा नैतिकता के साथ पुरातत्त्व की अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की ओर प्रेरित किया। पं. उत्तमचन्द्र राकेश ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये।

अन्त में सभी विद्वानों का सम्मान किया गया। गोष्ठी संयोजक डा. फूलचन्द्र जैन प्रेमी ने अपने परामर्शक प्रो. रमेशचन्द्रजी शर्मा के प्रति सहयोग हेतु आभार प्रदर्शन किया। चित्र प्रदर्शनी द्विदिवसीय गोष्ठी का प्रमुख आकर्षण थी। विद्वानों ने केसरगंज, अजमेर की जैन समाज के आत्मीय आतिथ्य की तथा व्यवस्था की भूरि - भूरि प्रशंसा की।

* इमारत बिल्डिंग,
दि. जैन अतिशय क्षेत्र,
श्रीमहावीरजी (करौली)

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

डॉ. हीरालाल जैन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी, 19 से 21 नवम्बर 99

■ कृष्णा जैन*

परमपूज्य **उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज** के ससंघ सान्निध्य में डॉ. हीरालाल जैन के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन 19 से 21 नवम्बर 99 के मध्य किया गया। डॉ. हीरालाल जैन सिद्धान्त, इतिहास, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के मनीषी एवं चिंतक थे। जैन साहित्य जगत के लिये षट्खण्डागम के सम्पादक के रूप में उनका अवदान अविस्मरणीय है। जैन साहित्य के आद्य ग्रन्थों का स्मरण डा. हीरालाल जैन के बिना अधूरा है। आपके इन्हीं अवदानों को विनयांजलि निवेदित करने हेतु ही जन्म शताब्दी वर्ष में यह आयोजन सम्पन्न हुआ, जिसके संयोजक **डा. भागचन्द जैन 'भागेन्दु'** एवं स्थानीय संयोजक **डा. सुशील पाटनी** थे।

डा. भागचन्द जैन 'भागेन्दु' के संयोजकत्व में उद्घाटन सत्र आरम्भ हुआ जिसका संचालन डा. सुशील पाटनी द्वारा किया गया। सत्र की अध्यक्षता प्रो. शुभचन्द्र जैन, मैसूर विश्वविद्यालय ने की। सारस्वत अतिथि के पद को डा. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर एवं विशिष्ट अतिथि के पद को पद्मश्री डा. लक्ष्मीनारायण दुबे, डा. लक्ष्मी शुक्ला, श्री शंकरसिंह (सदस्य - लोक सेवा आयोग, राजस्थान) ने सुशोभित किया। मंगलाचरण पं. ब्र. जयकुमार 'निशान्त', टीकमगढ़ द्वारा एवं ब्र. अनीती दीदी (संघस्थ) के भजन के साथ सम्पन्न हुआ। पूज्य **आचार्य श्री सुमतिसागरजी महाराज** के चित्र पर माल्यार्पण एवं दीपदीपन पूर्वक सत्र का आरम्भ हुआ। डा. कमलचन्द सोगाणी, जयपुर ने अपने प्राकृत एवं अपभ्रंश प्रेम को व्यक्त करते हुए कहा कि यदि मुझे प्राकृत एवं अपभ्रंश के अध्ययन एवं प्रचार - प्रसार के लिये नरक में भेज दिया जाये तो मैं वहाँ जाने के लिये सहर्ष तैयार हूँ। आपने डा. हीरालालजी जैन के अवदानों पर प्रकाश डाला। प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन ने भी डा. हीरालाल जैन के साहित्यिक अयदान को रेखांकित करते हुए डा. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' के अवदान का भी उल्लेख किया। डा. धर्मचन्द्र जैन ने डा. हीरालाल जैन के संस्मरणों पर प्रकाश डालते हुए डा. जैन को को मरणोपरान्त **सिद्धान्त चक्रवर्ती** की उपाधि से सम्मानित करने का प्रस्ताव किया।

उद्घाटन सत्र की समाप्ति के उपरान्त डा. हीरालाल जैन के साहित्य की पुस्तक प्रदर्शनी का उद्घाटन डा. कमलचन्द सोगाणी द्वारा सम्पन्न हुआ। परम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज के साथ दोपहर 1 बजे से पुनः विद्वानों की अन्तरंग गोष्ठी हुई जिसमें उपाध्यायश्री ने आज के सामाजिक वातावरण पर अपनी वेदना व्यक्त की एवं विद्वानों से तनावयुक्त जीवन, व्यसन मुक्त राष्ट्र, शाकाहार जीवन पद्धति पर साहित्य सृजन करने की प्रेरणा दी।

दिनांक 19.11.99 को दोपहर 2 बजे द्वितीय सत्र आरम्भ पं. शिवचरनलाल, मैनपुरी के मंगलाचरण से हुआ। सत्र की अध्यक्षता भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली के शोधाधिकारी डा. गोपीलाल 'अमर' ने की। सारस्वत अतिथि के रूप में सुशोभित थे डा. कमलचन्द सोगाणी एवं मुख्य अतिथि थे शास्त्री परिषद के यशस्वी अध्यक्ष प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन। प्राचार्य लालचन्द्र 'राकेश', गंजबासोदा द्वारा डा. हीरालाल जैन पर रचित कविता प्रस्तुत की गई। डा. सोगाणी ने अपभ्रंश एवं डा. हीरालालजी की अपभ्रंशीय साधना पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि क्रांतिकारी अपने समय से आगे चलता है शायद इसीलिये इतने वर्षों पूर्व हीरालालजी ने अपभ्रंश के बारे में सोचा।

दिनांक 20.11.99 को प्रातः 8.30 बजे से तृतीय सत्र एवं सायं 3 बजे से चतुर्थ सत्र में समागत विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने आलेखों का वाचन किया गया एवं उन पर विचार विमर्श हुआ। डा. उदयचन्द जैन (सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर) ने प्राकृत में रचित कविता 'प्राकृत पुरुष' का पाठ कर विद्वानों को मन्त्र मुग्ध किया।

पद्मश्री डा. लक्ष्मीनारायण दुबे ने कहा कि डा. हीरालाल जैन ने हिन्दी को विश्वभाषा, राष्ट्रभाषा बनाने में बहुत बड़ा योगदान दिया है। तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा डा. हीरालाल जैन की ही देन है। पारिभाषिक शब्दों, वैज्ञानिक एवं तकनीकी टिप्पणियों का समायोजन उनकी विद्वत्ता के परिचायक हैं। इन सब आयामों को देखने एवं प्रचलित करने की आवश्यकता है।

दोपहर 1 बजे से इसी सभा भवन में 'श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ' द्वारा 5 सारस्वत साधकों को भव्य रूप में सम्मानित किया गया। इस पुरस्कार योजना के संयोजक युवा विद्वान डा. अनुपम जैन थे। (इसकी आख्या हेतु देखें - अर्हत् वचन **11** (4), अक्टूबर - दिसम्बर 99, पृ. 77 - 78)

दिनांक 21.11.99 को पुन: पंचम शोध सत्र सुबह 8.30 पर आरम्भ हुआ। डा. जैन के व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए डा. अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर ने कहा कि हीरालाल जैन एक ऐसा हीरा जैसा व्यक्तित्व है जिसका फैलाव चारों ओर है। विभिन्न विदेशी लेखकों एवं विद्वानों से उनका सतत सम्पर्क एवं पत्राचार रहा है।

इस सत्र में डा. हीरालाल जैन पर एक डाक टिकिट जारी करने का भी प्रस्ताव पारित किया गया। दोपहर 1 बजे से पुन: उपाध्यायश्री के सान्निध्य में अन्तरंग चर्चा विद्वानों की हुई जिसमें डा. हीरालाल जैन स्मृति ग्रंथ प्रकाशन का प्रस्ताव उपाध्यायश्री के चरणों में निवेदित किया गया एवं उनके अप्रकाशित साहित्य तथा प्रकाशित आलेखों का पुस्तिका के रूप में प्रकाशन आदि विषयों पर विचार - विमर्श हुआ।

सायंकाल 3 बजे से समापन सत्र आरम्भ हुआ जिसकी अध्यक्षता राजस्थान वि.वि. के कुलपति डा. के.एल. कमल साहब ने की एवं मुख्य आतिथ्य श्री महावीर शरणजी, निदेशक - हिन्दी संस्थान, आगरा ने किया। डा. महावीरशरणजी ने अपने उद्बोदन में कहा कि एक बिन्दु तक कहानी हम बनाते हैं फिर कहानी हमें बनाती है। क्या उसकी पहचान हमें आती है? यह पंक्तियाँ डा. हीरालाल जैन के सम्बन्ध में विचारणीय हैं। उनका व्यक्तित्व उर्ध्वगामी चेतना का प्रमाण है। वे अवसरवादी परम्परा नहीं उदारवादी परम्परा की प्रतिमूर्ति हैं।

अध्यक्षीय आसंदी से उद्बोधन देते हुए कुलपति डा. के.एल. कमल ने कहा कि बुद्धिजीवी पूर्ण नहीं होता है, वीतरागी ही पूर्ण होता है। जनतन्त्र की रक्षा केवल अनेकान्तवाद से हो सकती है। उन्होंने विद्वानों से आग्रह किया कि आप विश्वविद्यालय में भी एक राष्ट्रीय संगोष्ठी डा. हीरालाल जैन पर आयोजित करें। **उन्होंने राजस्थान वि.वि. में अहिंसा और शांति पीठ की स्थापना करने की भी घोषणा की।**

समापन सत्र पर उद्बोधित करते हुए उपाध्यायश्री ने कहा कि इस राष्ट्रीय संगोष्ठी का यह समापन नहीं उद्घाटन है। इससे एक नई चेतना एवं स्फूर्ति मन को प्राप्त हुई है। कुलपतिजी की घोषणा से तो ऐसा लगता है कि अब तो संगोष्ठी का उद्घाटन हुआ है। डा. हीरालाल जैन ज्ञान और आचरण के समन्वय की प्रतिमूर्ति थे। उनका जीवन अनेकान्त से प्रभावित था। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से जनमानस को परिचित कराना अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि नई पीढ़ी को भी उनके त्याग एवं साहित्यिक लगन से कुछ प्रेरणा मिले एवं माँ जिनवाणी की सेवा कर सकें।

त्रिदिवसीय इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में देश के कोने - कोने से आकर विद्वानों ने इस ज्ञानयज्ञ में अपनी आहुतियाँ दी।

* सहायक प्राध्यापिका - संस्कृत,
महारानी लक्ष्मीबाई शास. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
ग्वालियर

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

तृतीय विराट राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी

झाडोल, 21.11.99 से 25.11.99

■ **श्रीमती गुणमाला जैन**

प्राचीन काल में भारतवर्ष विश्वगुरु के नाम से विख्यात रहा है। ज्ञान, विज्ञान, धर्म, दर्शन, कला आदि क्षेत्रों में भारत ने प्राचीन काल में श्रेष्ठतम मनीषियों, विद्वानों, चिन्तकों के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व को जीवन के प्रत्येक आयाम पर सुस्पष्ट मौलिक चिन्तन दिया। विदेशी जिज्ञासुओं की, ज्ञान - विज्ञान प्राप्ति हेतु तथा शिक्षण - प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिये भारत में उपस्थिति भी यही सिद्ध करती है। परन्तु भौगोलिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक कारणों से विश्वगुरु का गौरवमयी पद शनै: शनै: समाप्त हो गया। स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् भी विदेशी ज्ञान - विज्ञान को ही हम कब तक आदर्श मान कर बैठे रहेंगे।

यह चिन्ता **आचार्यरत्न श्री कनकनन्दीजी** विगत वर्षों से अनुभव कर रहे थे। गहनतम शोध, चिंतन, विचार - विमर्श के पश्चात् आपने अथक व अनवरत प्रयासों से **'सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान'** पुस्तक की रचना की जिसके द्वारा भारत की गरिमा को सुदृढ़ व पुनर्जीवित किया जा सके। इस सन्दर्भ में दिनांक 21.11.99 से 25.11.99 तक उदयपुर के झाडोल (सराड़ा) में धर्म - दर्शन - विज्ञान शोध संस्थान के तत्वावधान में राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की जिसमें लगभग 30 विषय विशेषज्ञ वैज्ञानिक, अनुसंधानार्थी प्रोफेसर्स व विद्वानों ने 12 सत्रों में 20 शोधपत्र प्रस्तुत किये। इस संगोष्ठी का उद्देश्य था कि वर्तमान शिक्षा पद्धति में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों व दर्शन के तत्वों का समावेश कर विद्यार्थियों में सुसंस्कारित भावना, राष्ट्रीय चारित्र, आत्म गौरव व स्वावलम्बन की भावना का विकास किया जा सके। संगोष्ठी में शिक्षा सुधार हेतु निम्न संस्तुतियाँ की गई -

1. बालकों के शैक्षणिक कैरियर का चयन उनके मनोविज्ञान के आधार पर होना चाहिये। इस हेतु बालक जब पहली कक्षा का विद्यार्थी हो, तब से लेकर 5 वीं कक्षा तक उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाये। अन्तत: इस अध्ययन के आधार पर बालक की चाह के विषय पर पढ़ने हेतु अग्रसर करना चाहिये। यद्यपि कक्षा 10 तक सभी विषय पढ़ाये जावें परन्तु उसके चयनित विषय विशेष रूप से पढ़ाये जायें। कक्षा 11 से केवल ऐच्छिक विषय को इस प्रकार से पढ़ाया जाये कि बालक इस क्षेत्र में विशेषज्ञ बन सके। इसके आधार पर राष्ट्र में, प्रत्येक क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त व्यक्ति मानव शक्ति हो जायेगी तथा वह व्यक्ति अपना रोजगार स्वयं प्राप्त कर सकता है।

2. शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न स्तरों के विभिन्न पाठ्यक्रमों में भारतीय संस्कृति, विशेषकर प्राचीन भारतीय संस्कृति, को सम्मिलित किया जाये जिससे छात्रों को महान परम्पराओं, ऋषियों, संतों, वैज्ञानिकों व चिंतकों का ज्ञान प्रदान किया जा सके।

3. वर्तमान समय में चारों ओर नैतिक पतन की पराकाष्ठा दृष्टिगत होती है। राष्ट्र के उज्जवल भविष्य के लिये यह हम सबकी चिंता का विषय है। अत: किशोर कोमल मस्तिष्क पर सुसंस्कारों, नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों को उनके व्यक्तित्व में प्रविष्ट किया जा सके तब यह शिक्षा की महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी। अत: मत निर्धारित किया गया कि नैतिकता एवं मूल्यों जैसे अमूर्त गुणों को मात्र पुस्तकीय अध्ययन एवं कक्षा की चहारदीवारी के अन्दर सीमित नहीं रखा जा सकता, अत: अध्यापक का व्यवहार पक्ष नैतिक व चारित्र पक्ष का सुदृढ़ होना आवश्यक है।

4. शिक्षकों का चयन ज्ञान, नैतिकता व संस्कारों के आधार पर हो तथा उन्हें पृथक से कुछ समय प्रशिक्षण दिया जाये। समय - समय पर मूल्यांकन करके जवाबदेही भी तय की जाये।

5. पूर्व में भारत के कमजोर सामाजिक - आर्थिक (Socio - Economic) ढांचे के फलस्वरूप शिक्षा का स्तर गिरता चला गया। सर्वविदित तथ्य के संदर्भ में यह अनुभव किया गया कि अब शिक्षा ही हमारे सामाजिक - आर्थिक ढांचे को मजबूत कर सकती है। परन्तु इस हेतु शिक्षा नीति के वर्तमान स्वरूप में आमूल - चूल परिवर्तन करना होगा।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जैन साहित्य के सृजन, अध्ययन, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अन्तर्गत रुपये 25,000 = 00 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रतिवर्ष देने का निर्णय 1992 में लिया गया था। इसके अन्तर्गत नगद राशि के अतिरिक्त लेखक को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह, शाल, श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया जाता है।

पूर्व वर्षों की भांति **वर्ष 1998** के पुरस्कार हेतु विज्ञान की किसी एक विधा यथा गणित, भौतिकी, रसायन विज्ञान, प्राणि विज्ञान, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के क्षेत्रों में जैनाचार्यों के योगदान को समग्र रूप में रेखांकित करने वाली 1994 - 98 के मध्य प्रकाशित अथवा अप्रकाशित हिन्दी / अंग्रेजी में लिखित मौलिक कृतियाँ **28.02.1999** तक सादर आमंत्रित की गई थी। प्राप्त प्रविष्टियों का मूल्यांकन कार्य प्रगति पर है। निर्णय की घोषणा मार्च 2000 में की जायेगी। 1999 के पुरस्कार हेतु प्राप्त प्रविष्टियों के मूल्यांकन हेतु निर्णायक मंडल के गठन की प्रक्रिया चल रही है। 2000 के पुरस्कार की विज्ञप्ति 29 मार्च 2000 को जारी कर **12** (2), अप्रैल 2000 अंक में प्रकाशित की जायेगी।

ज्ञानोदय पुरस्कार

श्रीमती शांतादेवी रतनलालजी बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमलजी बोबरा, इन्दौर द्वारा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से ज्ञानोदय पुरस्कर की स्थापना 1998 से की गई है। यह सर्वविदित तथ्य है कि दर्शन एवं साहित्य की अपेक्षा इतिहास एवं पुरातत्व के क्षेत्र में मौलिक शोध की मात्रा अल्प रहती है। फलतः यह पुरस्कार जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष जैन इतिहास के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र / पुस्तक प्रस्तुत करने वाले विद्वान को रु. 5,001 = 00 की नगद राशि, प्रशस्ति पत्र, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा।

1994 - 98 की अवधि में प्रकाशित अथवा अप्रकाशित जैन इतिहास / पुरातत्व विषयक मौलिक शोधपूर्ण लेख / पुस्तक के आमंत्रण की प्रतिक्रिया में 31.12.98 तक हमें 6 प्रविष्टियाँ प्राप्त हुई। इनका मूल्यांकन **प्रो. सी. के. तिवारी,** से.नि. प्राध्यापक - इतिहास, **प्रो. जे.सी. उपाध्याय,** प्राध्यापक - इतिहास एवं **श्री सूरजमल बोबरा** के त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल द्वारा किया गया। निर्णायक मंडल की अनुशंसा पर **श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल,** अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने ज्ञानोदय पुरस्कार - 98 की निम्नवत् घोषणा की है -

डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी, पूर्व निदेशक - रामकथा संग्रहालय (उ.प्र. सरकार का संग्रहालय), अयोध्या, निवास - 223 / 10, रस्तोगी टोला, राजा बाजार, लखनऊ। ***जैनधर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य,*** *अप्रकाशित पुस्तक। यह पुरस्कार 29.3.2000 को समर्पित किया जायेगा।*

1999 के पुरस्कार हेतु 1995 - 99 की अवधि में प्रकाशित / अप्रकाशित मौलिक शोधपूर्ण लेख / पुस्तकें 31 मार्च 2000 तक आमंत्रित हैं। प्रस्ताव पत्र का प्रारूप एवं नियमावली कार्यालय से प्राप्त की जा सकती हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

प्रत्येक दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं संग्रहणीय कृति

मूल संघ और उसका प्राचीन साहित्य, पं. नाथूलाल जैन शास्त्री
प्रस्तावना - **पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य**, प्रकाशक - **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ**, 584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर, 1999
साइज - **डेमी 1/8**, पृष्ठ - **XVIII + 204**, मूल्य : **रु. 70 = 00**
समीक्षक - **पं. शिवचरनलाल जैन**, अध्यक्ष - तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ, सीताराम मार्केट, मैनपुरी (म.प्र.)

पं. नाथूलालजी जैन शास्त्री द्वारा लिखित 'मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य' ग्रन्थ मिला। वर्तमान में डा. सागरमल जैन द्वारा लिखित 'जैन धर्म में यापनीय सम्प्रदाय' कृति अत्यन्त चर्चित एवं दिगम्बर जैन आम्नाय के लिये चिन्ता का विषय बनी हुई है। उसमें श्वेताम्बर आम्नाय के मत के पक्षाग्रह के कारण अनेकों विसंगतियों को लेखक द्वारा समाहित कर दिया गया है। इस विषय में विद्वानों की संस्थाओं को भी चिन्ता है। इस ओर प्रयत्न भी किये जा रहे हैं। प्रयत्नों का उद्देश्य उक्त ग्रन्थ की मिथ्या मान्यताओं का निरसन एवं वास्तविक तथ्यों का प्रकटीकरण है।

पूज्य पंडितजी साहब ने उसी दिशा में इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है। रचना बहुआयामी है। ज्ञान गरिष्ठता से परिपूर्ण है, सामयिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु सार्थक प्रयास है। वे अत्यन्त साधुवाद के पात्र हैं। मैं उनको नमन करता हूँ।

राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज ने आशीर्वचन में मूलसंघ के प्राचीन सन्दर्भों का संकलन कर इसकी उपयोगिता में अगुणित वृद्धि कर दी है।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने पंडितजी को इस ग्रन्थ के लेखन हेतु प्रेरित किया था अत: संस्था एवं उसके नियोजकों को इस कार्य हेतु मैं बधाई देता हूँ।

इसके प्रकाशन हेतु कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के प्रति मैं अपनी शुभकामना देता हूँ। अर्थ व्यवस्था हेतु श्री सिद्धकूट चैत्यालय टेम्पल ट्रस्ट (श्री निर्मलचन्द प्रमोदचन्द्र सोनी) की विशेष सहभागिता भी समाज के लिये एक विशेष योगदान सिद्ध होगी। ग्रन्थ प्रत्येक दृष्टि से महत्वपूर्ण है तथा संग्रहणीय है।

कु. शकुन्तला जैन को पीएच.डी.

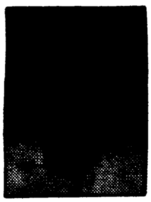

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की शोध छात्रा **कु. शकुन्तला जैन** ने विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन से डा. शचीन्द्र प्रसाद उपाध्याय, प्राध्यापक - इतिहास, माधव महाविद्यालय, उज्जैन के सुयोग्य मार्गदर्शन में 'आयुर्वेद के विकास में जैनाचार्यों का योगदान (ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में - वैदिक काल से 17 वीं शताब्दी तक)' विषय पर Ph.D. की उपाधि प्राप्त की।

डा. शकन्तला जैन ने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर में अनेकश: रहकर ज्ञानपीठ के विद्वानों के सहयोग से सामग्री का संकलन एवं प्रबन्ध का लेखन किया।

डा. जैन को उनकी इस उपलब्धि पर हार्दिक बधाई।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम में इन्द्रध्वज महामण्डल विधान

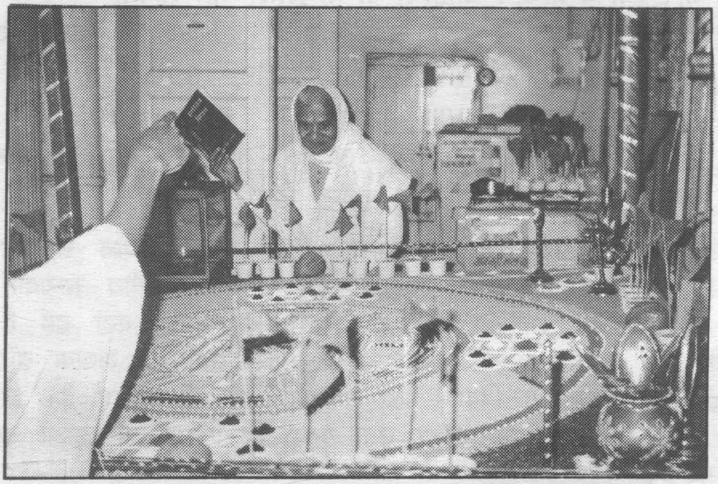

विधानाचार्य पं. रतनलालजी शास्त्री मंडल का अवलोकन करते हुए

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, इन्दौर में इन्द्रध्वज महामंडल विधान का 10 दिवसीय आयोजन पं. श्री रतनलालजी शास्त्री के मार्गदर्शन एवं प्रतिष्ठाचार्य ब्र. अनिलजी, ब्र. अभयजी एवं ब्र. अजितजी के सान्निध्य में 11 से 20 फरवरी के मध्य सानंद सम्पन्न हुआ। अंतिम दिन विश्वशांति के उद्देश्य हेतु आहुतियाँ दी गईं। यह विधान आश्रम में साधनारत ब्र. फूलचन्दजी गंगाधर (अहमदाबाद वाले) एवं उनके परिवार की ओर से कराया गया। इसमें प्रमुख रूप से इन्द्र - इन्द्राणी के रूप में श्री निर्मलकुमारजी जैन, श्री श्रीकृष्णजी जैन (जज साहब), श्री हीरालालजी गोधा आदि 21 जोड़ों ने पूजा में भाग लिया और अपने तन - मन - धन का अमूल्य योगदान दिया। दिगम्बर जैन श्राविकाश्रम की समस्त ब्रह्मचारिणी बहिनों ने भी इसमें उत्साहपूर्वक भाग लिया। पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित विधान की काव्यात्मकता एवं संगीतमयी पूजन ने सभी को भावविभोर कर श्रद्धा से ओतप्रोत कर दिया।

सम्मान समारोह में पं. रतनलालजी विधानाचार्य, ब्र. अनिलजी, ब्र. अभयजी को श्रीफल समर्पित कर सम्मानित कियां गया। साथ ही आश्रमस्थ समस्त ब्रह्मचारिणी बहिनों को भी श्रीफल एवं शास्त्र सम्मानार्थ प्रदान किये गये।

पं. रतनलालजी शास्त्री ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि मानव को अपने जीवन से व्यसन जैसी बुरी आदतों को दूर करना चाहिये। उन्होंने पांडवों का उदाहरण देते हुए कहा कि जुआ खेलने के फलस्वरूप उन्हें 12 वर्ष के लिये वन जाना पड़ा एवं कष्ट सहन करना पड़ा, यहाँ तक कि अपने राज्य एवं पत्नी को भी खोना पड़ा।

श्रीकृष्णजी जैन, जज साहब ने अपने उद्‌बोधन में सभी को बताया कि यदि कोई ऐसा स्थान है जहाँ श्रावक षट् आवश्यकों को सही रीति से पालन कर सके तो वह है श्री दि. जैन उदासीन आश्रम। यहाँ मैं विगत ढ़ाई वर्षों से निरन्तर पूजन, स्वाध्याय आदि कर रहा हूँ। ब्रह्मचारिणी बहिन अनीता एवं चन्द्रलेखाजी ने सभी को सम्बोधित करते हुए कहा कि हमें गुणों की पूजन तथा गुणीजनों का सम्मान अवश्य करना चाहिये।

हवन में आहूति देते हुए ब्रह्मचारी अनिलजी ने हवन का महत्व बताया और संसारी प्राणी को क्रमशः भावों की विशुद्धि पूर्वक मोक्ष तक की यात्रा सुगम रीति से करने की विधि बताई। हवन के उपरान्त सभी धर्म बन्धुओं के सामूहिक भोजन का आयोजन रखा गया।

भारत के प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी बाजपेयीजी का राष्ट्र के नाम संदेश

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी, पू. आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी, पूज्य क्षुल्लक श्री मोतीसागरजी महाराज, केन्द्रीय मंत्रिमंडल में मेरे सहयोगी श्री धनंजयकुमारजी, साहू रमेशजी जैन, ब्रह्मचारी रवीन्द्रकुमारजी जैन एवं भगवान ऋषभदेव निर्वाण महोत्सव समिति के सभी सम्माननीय सदस्यगण, देवियों और सज्जनों।

लगभग एक वर्ष होने के साथ मुझे आप सभी के दर्शन करने का पुन: सौभाग्य मिला है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि जो समवसरण धर्मरथ चालू किया गया था, चलाया गया था, निरन्तर चल रहा है। धर्म का चक्र चलना भी चाहिये। निरन्तर चलना, जड़ होकर बैठना नहीं, हाथ रखकर समय नहीं बिताना, निरन्तर चलते रहना, यह धर्म की पहचान है। चलना जीवन है। मैं देखता हूँ साध्वियों को जिन्होंने पांव-पांव चलने का संकल्प लिया है। मौसम बाधक नहीं बनता, क्योंकि मंत्र है चरैवेति-चरैवेति। धर्म के रास्ते पर चलना चाहिये। धर्म वह तत्त्व है जो धारण करता है, शक्ति देता है, जो सद्बुद्धि देता है, जो औरों का भला करना सिखाता है। हमारे देश में धर्म की प्राचीन परम्परा रही है। हमारे देश में दृष्टि अलग-अलग है, मान्यतायें अलग-अलग हैं, लेकिन सृष्टि एक ही है। यह धर्मपरायण देश है, यहाँ मजहबी भेदभाव नहीं है। उपासना पद्धति को लेकर शास्त्रार्थ तो होते रहते हैं लेकिन इस देश की विशेषता रही है कि दूसरे के सत्य को भी स्वीकार करने की तत्परता रही है। यह प्रसन्नता की बात है कि भगवान ऋषभदेवजी का निर्वाण महोत्सव मनाया जा रहा है। चौबीस तीर्थंकर हुए थे, सभी ही आदरणीय हैं, पूजनीय हैं। लेकिन सबके बारे में जितनी जानकारी चाहिये, उतनी नहीं है। अभी. पू. माताजी कह रही थीं कि कई लोग तो यह समझते हैं कि जैन धर्म की स्थापना भगवान महावीर ने की, जबकि सच्चाई यह है कि वे चौबीसवें तीर्थंकर थे, उनसे पहले 23 तीर्थंकर और हुए हैं। मेरे सरकारी दफ्तर के कमरे में तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति रखी हुई है। बहुत से लोग आते हैं, पहचान नहीं पाते हैं, उनको बताने का काम श्री धनंजय ही करते हैं। लेकिन जानकारी होनी चाहिये। जैसे-जैसे हम महापुरुषों के बारे में, देवताओं के बारे में जानते हैं, जानने की कोशिश करते हैं, ज्ञान के नये आयाम हमारे सामने खुलते हैं। इस पर अनुसंधान होना चाहिये कि भारत नाम किससे संबंधित है। हजारों साल पहले हम जो जीवन जीते थे, और इसके बारे में कहा गया है कि जीवन जीने की कला है। मेरा निवेदन है कि जीवन कला भी है और जीवन विज्ञान भी है। लेकिन कला और विज्ञान अलग-अलग नहीं हैं। और जब मैं देख रहा था ऋषभदेवजी के बताये हुए सूत्र जिनका यहाँ बार-बार उल्लेख किया गया। 6 सूत्र हैं - **असि** - असि का अर्थ है तलवार, रक्षा का शस्त्र। पहला स्थान है असि का, आक्रमण के लिये शस्त्र नहीं, रक्षा के लिये, धर्म की रक्षा के लिये, राष्ट्र की रक्षा के लिये। सबसे पहले असि इसलिये रखा गया कि खेती को सुरक्षित रखना होगा, जंगली जानवरों से, खेती को सुरक्षित रखना होगा पड़ोसियों से और सुरक्षा के लिये कभी-कभी शस्त्र की आवश्यकता भी होगी। लेकिन यदि शस्त्र है तो उसके उपयोग की जरुरत नहीं पड़ेगी। शस्त्र है, यह जानकारी आक्रमणकारी को गलत रास्ते पर चलने से रोकती है, इसके बाद ज्ञान की बात आई है - **मसि।** मसि मायने स्याही, लेखन लिखने के लिये स्याही चाहिये, अब तो खैर फाउंटेन पेन में स्याही भरी है लेकिन मसि बहुत आवश्यक है और हजारों साल पहले इसकी जानकारी

हमें थी। आज हम साक्षरता दिवस मना रहे हैं, सारे भारत को साक्षर करने के लिये निकले हुए हैं। इससे स्पष्ट है कि पराधीनता का काल नहीं होता तो इस देश में गैर पढ़े-लिखे लोग नहीं होते। लेकिन उपेक्षा हुई, अनाज का उत्पादन घटा, **विद्या, वाणिज्य** और **शिल्प** कारीगरी, वही टेक्नालॉजी है। निर्माण करना और यह हजारों साल पहले की बात है। हम जरा कल्पना करें, आज भी उनका उल्लेख होता है। इस देश में, इस देश की मिट्टी में, जीवन को कभी टुकड़ों में नहीं देखा गया, समग्रता में देखा गया, समग्रता को जीवन में देखते हुए हमने जीवन के विकास का प्रयत्न किया। इसीलिये तो हजारों साल से इस देश का अस्तित्व है। इस देश का लोहा आज भी माना जाता है। देश महान शक्ति बनने की सारी सम्भावना से परिपूर्ण है। यह हमारे मित्र और शत्रु दोनों स्वीकार करते हैं। हमें अवसर मिला है कि नैतिकता के रास्ते पर चलते हुए, धर्म का अवलम्बन करते हुए, हम प्राणी मात्र को सुखी बनाने के अपने संकल्प पर आगे बढ़ने का प्रयास करें। मैं आशीर्वाद लेने के लिये आया था वह मुझे पर्याप्त मात्रा में मिल गया है। अगले कार्यक्रम तक यह आशीर्वाद मेरे काम आयेगा। हमें आशीर्वचन चाहिये, इससे हम सही रास्ते पर दृढ़ता के साथ चल सकें। कर्तव्य और अकर्तव्य के बीच कभी-कभी द्वन्द होता है, एक धर्म संकट जैसी स्थिति पैदा हो जाती है। जब विमान का अपहरण किया गया तब ऐसी स्थिति पैदा हो गई थी। अगर विमान में मेरे घर वाले होते, मेरे सगे संबंधी होते तो उन्हें बलि चढ़ाने में मुझे एक क्षण के लिये भी संकोच नहीं होता। मगर जो थे, वे भारत के नागरिक थे, विदेश से हवाई जहाज में चढ़े थे, विदेश में रूक गये जाकर। रक्त बहाकर भी उनकी रक्षा संभव नहीं थी। इसलिये यह फैसला लिया गया। हृदय पर पत्थर रखकर फैसला किया गया कि हम ऐसा कदम उठायेंगे, इसमें भले ही हमें आलोचना का लक्ष्य बनना पड़े। लेकिन प्राण रक्षा हो। और जो दुष्ट हैं, वे बेनकाब हों, उनके चेहरे पर पड़ी हुई कायरता की नकाब हटे। विमान का अपहरण करना कोई बहादुरी का काम नहीं है, बहादुरी का काम था कारगिल की चोटियों पर बैठे हुए आक्रमणकारियों को वहाँ से हटाना, चोटियों पर बैठे हुए और हमारे बहादुर जवान नीचे थे, मगर चोटियों पर पहुँचना था, संकल्प था, जान पर जूझने का सवाल था, मगर तैयारी थी, कर्तव्य की पुकार थी और उसका पालन किया वीर जवानों ने। देश को संकटों से गुजारकर, संकटों से बचाकर ले जाना यह जनता के सहयोग से ही संभव है। घर के भीतर, घर के बाहर हमारी बढ़ती हुई शक्ति एवं हमारी बढ़ती हुई समृद्धि को देखकर षड्यंत्र रचे जा रहे हैं। देश के भीतर जाली नोट बड़ी मात्रा में भेजने की कोशिश हुई। हमारी अर्थ व्यवस्था को चौपट करने के तरीके अपनाये जा रहे हैं। लेकिन हर संकट को हमने सफलता के साथ झेला है और आने वाले संकटों को भी हम चकनाचूर करेंगे, यह हमारा विश्वास है। इसके लिये हमें सबका सहयोग चाहिये। सत्पुरुषों, देवताओं का आशीर्वाद चाहिये। आपने मुझे यहाँ बुलाया है, मैं आपका आभारी हूँ। मैं स्वयं को आपके आशीर्वाद के लायक सिद्ध कर सकूँ यही मेरी परमात्मा से प्रार्थना है। बहुत-बहुत धन्यवाद, नमस्कार।

भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष

4 फरवरी 2000 से फरवरी 2001 तक

समारोह पूर्वक मनायें।

भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव का उद्‌घाटन

जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर, आदिब्रह्मा, भगवान ऋषभदेव के अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव का भव्य उद्‌घाटन भारत के लोकप्रिय प्रधानमंत्री माननीय **श्री अटलबिहारी वाजपेयी** के करकमलों से 4 फरवरी 2000, माघ कृष्णा चतुर्दशी को जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, **गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी** के पावन सान्निध्य में हुआ, जिसके अन्तर्गत मेला, 72 रत्न प्रतिमाओं का पंचकल्याणक महोत्सव एवं महामस्तकाभिषेक 4 फरवरी (माघ कृष्णा 14) से 10 फरवरी 2000 (माघ शुक्ल 5) तक सानंद सम्पन्न हुआ।

4 फरवरी को प्रातः 11 बजे मुख्य सभा का शुभारम्भ हुआ जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री अटलबिहारी वाजपेयी एवं अध्यक्ष के रूप में श्री वी. धनंजयकुमार जैन, वित्त राज्य मंत्री, भारत सरकार पधारे, जिनके द्वारा दीप प्रज्जवलन कर निर्वाण महामहोत्सव का उद्‌घाटन किया गया। साथ ही कैलाश पर्वत का उद्‌घाटन कर प्रथम निर्वाण लाडू चढ़ाने का सौभाग्य भी प्राप्त किया भारत के प्रधानमंत्रीजी ने। (प्रधानमंत्रीजी के उद्‌बोधन का अविकल पाठ पृष्ठ 91 - 92 पर प्रकाशित है।)

वित्त राज्यमंत्री श्री धनंजयकुमार ने कहा कि माननीय प्रधानमंत्रीजी की मुखवाणी से इस कार्यक्रम के सन्दर्भ में जो संदेश जायेगा वह सारे देश को आगे लाने के लिये, दुनिया के सामने इस कार्यक्रम को आगे लाने के लिये पहली कड़ी होगी और उसमें हम सब एक साथ जुटेंगे। महोत्सव समिति के कार्याध्यक्ष बाल ब्रह्मचारी कर्मयोगी श्री रवीन्द्रकुमारजी ने कार्यक्रम का संचालन किया। मंच पर दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष **श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल,** दिग. जैन महासभा के केन्द्रीय अध्यक्ष **श्री निर्मलकुमार सेठी,** दिग. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी एवं दिग. जैन परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष **श्री साहू रमेशचन्दजी जैन,** फेडरेशन ऑफ जैन एसोसिएशन ऑफ नार्थ अमेरिका के अध्यक्ष **डा. महेन्द्र पांड्या** के अतिरिक्त दिग. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के पदाधिकारीगण तथा महोत्सव समिति के अनेक पदाधिकारीगण भी उपस्थित थे। माननीय प्रधानमंत्रीजी के मंच पर आगमन से पूर्व अनेक वरिष्ठ अधिकारियों के साथ डा. अनुपम जैन ने उनका माल्यार्पण से स्वागत किया। कार्यक्रम में पूज्य माताजी द्वारा रचित षट्‌खडागम की सिद्धान्त चिन्तामणि टीका भाग - 2 तथा ज्ञानामृत' पुस्तक का विमोचन भी प्रधानमंत्रीजी के करकमलों से सम्पन्न हुआ।

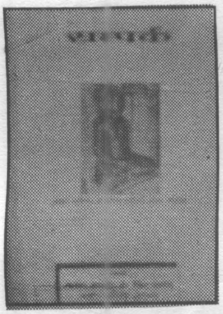

6 से 10 फरवरी के मध्य पंचकल्याणक की क्रियाएँ सम्पन्न हुईं। 9 फरवरी को भगवान ऋषभदेव की विशाल रथयात्रा निकली। 5 फरवरी को युवा सम्मेलन के परान्त तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ की कार्यकारिणी की बैठक में पं. शिवचरणलाल जैन - मैनपुरी, डा. नलिन के. शास्त्री - बोधगया, डा. अनुपम जैन - इन्दौर, डा. अभयप्रकाश जैन - ग्वालियर, ब्र. (कु.) सारिका जैन - संघस्थ, डा. मालती जैन - मैनपुरी, पं. उत्तमचन्द्र जैन 'राकेश' - ललितपुर, श्री संजीव सराफ - सागर आदि अनेक विद्वान उपस्थित थे। इस सभा में श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के सहयोग से डा. अनुपम जैन द्वारा संकलित विद्वत् महासंघ द्वारा प्रकाशित 'सम्पर्क' शीर्षक डायरेक्टरी का श्री अनिलकुमार जैन 'कागजी' ने विमोचन कराया। इस डायरेक्टरी में जैन अध्येताओं, जैन पत्र - पत्रिकाओं, जैन शोध संस्थानों, जैन प्रकाशकों तथा पुस्तक विक्रेताओं की पूरी जानकारी 4 खण्डों में संकलित है। इसी अवसर पर पं. जयसेन जैन द्वारा सन्मति वाणी एवं श्रीमती सुमन जैन

द्वारा ऋषभ देशना के विशेषांकों का लोकार्पण सम्पन्न हुआ।

दिनांक 6 फरवरी को आयोजित सर्व धर्म सभा में विभिन्न गुरुओं के अतिरिक्त प्रख्यात पुराविद् श्री मुनीशचन्द्र जोशी एवं प्रो. प्रभाकर मिश्र - पूर्व कुलपति के उद्‌बोधन अत्यन्त प्रभावी रहे। पूर्व कुलपति प्रो. मिश्र ने कहा कि ऋषभ के अनुसंधान से ही देश का कल्याण संभव है। सम्पूर्ण कलाओं एवं विद्याओं का इसमें समावेश है। भगवान ऋषभदेव ने सृष्टि के प्रथम राजा बनकर समस्त शासकों को शासन करना सिखाया। पुराविद् डॉ. मुनीशचन्द्र जोशी ने कहा कि यदि हम भगवान ऋषभ के 6 सिद्धान्तों पर चलें तो देश की अर्थ व्यवस्था सुधर सकती है, देश से हिंसा, भ्रष्टाचार, अनाचार मिट सकता है। श्वेताम्बर जैन मुनि अमरेन्द्रजी, साध्वी प्रवीणाजी, जत्थेदार रिछपालसिंहजी ने भी अपने विचार रखे। कार्यक्रम का संयोजन श्री हृदयराज जैन ने एवं संचालन डा. अनुपम जैन ने किया। इसी अवसर पर पूज्य आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी द्वारा रचित सचित्र 'ज्ञानाञ्जलि' पुस्तक का विमोचन किया गया।

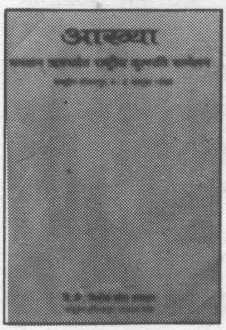

दिनांक 8 फरवरी को केन्द्रीय लोक निर्माण मंत्री श्री राजनाथसिंह एवं लोकप्रिय सांसद श्री राघवजी पधारे। इस विशेष धर्मसभा में पूज्य माताजी की प्रेरणा से 4 - 6 अक्टूबर 98 के मध्य जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर में आयोजित भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन की 250 पृष्ठीय 'आख्या' का विमोचन किया गया। इसमें सम्मेलन की सम्पूर्ण कार्यवाही तो संकलित है ही, देश के दर्जनों कुलपतियों के आलेखों / संदेशों में जैन धर्म की प्राचीनता, भगवान ऋषभदेव की देश की विभिन्न संस्कृतियों में सर्वमान्यता, उनकी शिक्षाओं की आवश्यकता, उपादेयता के बारे में व्यक्त उद्‌गार दिशाबोधक हैं। इसका संपादन डा. अनुपम जैन ने किया है।

महोत्सव के उद्‌घाटन अवसर पर आयोजित ऋषभदेव जैन मेला के मुख्य आकर्षण 8 पेवेलियन, दुकानें एवं झूले आदि थे, जिन्होंने दर्शकों एवं पर्यटकों का मनोरंजन करने के साथ ज्ञान भी प्रदान किया। इनके बारे में विस्तृत रिपोर्ट अगले अंक में प्रकाशित की जायेगी। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा भी जैन साहित्य एवं पत्र - पत्रिका पेवेलियन का संयोजन किया गया था।

कार्यक्रम के समापन में दिल्ली के राज्यपाल श्री विजय कपूर मुख्य अतिथि तथा प्रख्यात विधिवेत्ता एवं सांसद श्री लक्ष्मीमल सिंघवी अध्यक्ष के रूप में पधारे।

पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजी ने समापन सभा में कहा कि - 'यह महोत्सव का अथ है, मैं कभी इति नहीं करती। आप सबको निरन्तर भगवान ऋषभदेव की शिक्षाओं का प्रचार - प्रसार कर धर्म, समाज एवं राष्ट्र की सेवा करनी है, पुण्य का अर्जन करना है। इसमें सब सफल हों, यही मेरा मंगल आशीर्वाद है।' रत्न प्रतिमाओं के अभिषेक के साथ ही इस सप्त दिवसीय आयोजन का समापन एवं वर्ष पर्यन्त चलने वाले कार्यक्रमों का शुभारम्भ हुआ।

■ **डा. अनुपम जैन, प्रचार मंत्री**

भगवान महावीर से जैन धर्म का प्रारंभ मानना भ्रांति है

— उपाध्याय मुनि श्री निजानन्द सागरजी

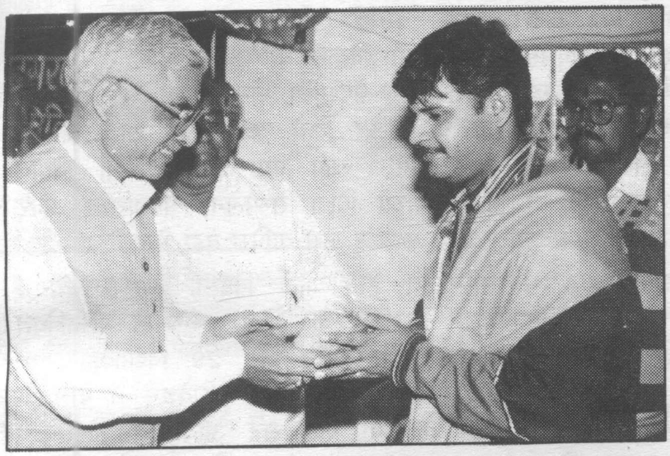

संयोजक श्री विजयकुमार जैन का स्वागत करते हुए श्री प्रकाशचन्द सर्राफ

परमपूज्य गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किला मैदान से 22 मार्च 98 को प्रवर्तित भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान होता हुआ 5 अप्रैल 99 को मध्यप्रदेश के सीमान्त नगर नीमच पहुँचा। 5 अप्रैल 99 से 15 जनवरी 2000 तक मध्यप्रदेश के 352 नगरों/ग्रामों/कस्बों में भ्रमण कर जैन धर्म की प्राचीनता एवं भगवान ऋषभदेव की कल्याणकारी शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार करता हुआ मध्यप्रदेश के अंतिम पड़ाव इन्दौर नगर के तिलक नगर क्षेत्र .में 16 जनवरी 2000 को आया। तिलकनगर, महावीरनगर, संविद नगर, कनाड़िया रोड आदि क्षेत्रों में निकाली गई भव्य शोभायात्रा के पूर्व आयोजित विशेष धर्मसभा को संबोधित करते हुये उपाध्याय मुनि श्री निजानन्दसागरजी ने कहा कि - 'देश को गणिनी आर्यिका ज्ञानमती के द्वारा दिया गया योगदान प्रशंसनीय है। उन्होंने भगवान ऋषभदेव की मानवता के कल्याण हेतु दी गई शिक्षाओं तथा जैन धर्म की प्राचीनता के प्रचार-प्रसार हेतु इस समवसरण श्रीविहार की योजना समाज को दी। वेद, पुराण, भागवत सभी में और अनेक संस्कृतियों में ऋषभदेव पूज्य हैं इसके बावजूद 24 वें तीर्थंकर भगवान महावीर को जैन धर्म का संस्थापक बताना प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, 22 वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि, 23 वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता एवं उनके अस्तित्व को नकारना उचित नहीं है। समाज को संगठित होकर रथ प्रवर्तन के माध्यम से जन-जन तक वास्तविक तथ्यों को पहुँचाने हेतु कटिबद्ध हो जाना चाहिये। आर्यिका ऋषिवाणी माताजी ने भी भगवान ऋषभदेव के जीवन पर प्रकाश डाला। सभा में महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष **श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल**, राष्ट्रीय मंत्री **श्री माणिकचंद पाटनी**, समवसरण श्रीविहार प्रान्तीय समिति के अध्यक्ष **श्री हुकुमचंद जैन (शाह बजाज)**, प्रान्तीय महामंत्री **श्री प्रकाशचन्द जैन सर्राफ** (सनावद), प्रान्तीय संयोजक **डॉ. अनुपम जैन**, प्रान्तीय उपाध्यक्ष **श्री इन्दरचन्द चौधरी** (सनावद), प्रान्तीय मंत्री **पं. जयसेन जैन**, प्रान्तीय प्रचार मंत्री **श्री नन्दलाल टोंग्या**, शासन सम्पर्क मंत्री **श्री कैलाशचन्द चौधरी** (सनावद), दिग. जैन समाज, इन्दौर के अध्यक्ष **श्री हीरालालजी झांझरी**, महामंत्री **श्री कैलाश वेद**, दिग. जैन समाज तिलकनगर के अध्यक्ष **श्री भागचन्द लुहाडिया**, मंत्री **डा. प्रकाशचन्द्र जैन** तथा अन्य अनेक गणमान्य महानुभाव उपस्थित थे। कार्यक्रम में रथ प्रवर्तन के संयोजक श्री विजय कुमार जैन तथा संचालक पं. सुधर्मचन्द्र जैन शास्त्री का समिति की ओर से वरिष्ठ समाजसेवी श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल एवं श्री हुकुमचन्द जैन ने सम्मान किया। म.प्र. के उपरान्त 18 जनवरी से रथ का प्रवर्तन गुजरात प्रान्त में हो रहा है।

ज्ञातव्य है कि म.प्र. में रथ प्रवर्तन की सम्पूर्ण योजना जैनीत्न श्री देवकुमारसिंह कासलीवालजी के मार्गदर्शन एवं संरक्षण में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में ही तैयार की गई थी।

प्राच्य विद्या सम्मेलन चेन्नई (मद्रास) में

अ.भा. प्राच्य विद्या सम्मेलन का 40 वाँ अधिवेशन 28, 29, 30 मई 2000 का मीनाक्षी कॉलेज, अरकोट रोड कोडमबक्कम, चेन्नई (मद्रास) में आयोजित हो रहा है। इस सम्मेलन में देश - विदेश के लगभग 1500 सौ विद्वान सम्मिलित होंगे। इस अधिवेशन के प्राकृत एवं जैन धर्म खण्ड के अध्यक्ष प्रोफेसर डा. प्रेमसुमन जैन, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर चुने गये। प्राकृत एवं जैनधर्म विभाग में प्रस्तुत किये जाने वाले शोध आलेखों का प्रमुख विषय **''जैन विद्या अध्ययन के 100 वर्ष''** रखा गया है। जो भी विद्वान इस सम्मेलन में सम्मिलित होना चाहते हैं वे अ.भा. प्राच्य विद्या सम्मेलन, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टटीयूट पूना - 411004 से सदस्यता फार्म मंगाकर उसे वापिस वहां भेज दे।

प्राकृत एवं जैन धर्म खण्ड में सम्मिलित होने वाले विद्वानों से अनुरोध है कि वे अपने शोध आलेख का विषय ''जैन विद्या अध्ययन के 100 वर्ष'' से सम्बन्धित रखें और अपने आलेख की एक टंकित प्रति प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन 29 विद्याविहार कॉलोनी, उत्तरी सुन्दरवास, उदयपुर - 313001 को अवश्य भिजवा दें। इस अधिवेशन में प्रो. हीरालाल जैन (जबलपुर) के योगदान सम्बन्धी आलेखों का भी एक सत्र आयोजित होगा। चयनित स्तरीय शोध आलेखों के प्रकाशन की, और उनके लेखकों को समुचित मानदेय प्रदान करने की भी व्यवस्था की जा रही है।

■ डा. अशोक कुमार जैन
जैन विश्व भारती संस्थान,
लाडनूं (राजस्थान)

श्री सुरेन्द्र जैन को ''पउमचरियं'' पर पी.एच.डी. की उपाधि

जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर ने संस्कृत विभाग के शोध छात्र श्री सुरेन्द्र कुमार जैन को ''आचार्य विमलसूरिकृत पउमचरियं : साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन'' विषय पर उत्कृष्ट शोध कार्य हेतु पी.एच.डी. की उपाधि से सम्मानित किया है। यह शोध कार्य उन्होंने विदुषी डॉ. (श्रीमती) लक्ष्मी शुक्ला के कुशल निर्देशन में सम्पन्न किया। डा. सुरेन्द्र ''पुराककड़ारी'' जिला ललितपुर के श्री माणिकचन्द जैन के सुयोग्य विद्वान पुत्र हैं। वर्तमान में आप श्री महावीर सीनियर सैकण्डरी स्कूल, लाडनूं (राज.) में संस्कृत अध्यापक के पद पर कार्यरत है।

■ कुमार अनेकान्त जैन
जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय
लाडनूं - 341306 (राज.)

अपभ्रंश साहित्य अकादमी

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी द्वारा ''पत्राचार प्राकृत सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम'' प्रारंभ किया जा रहा है। सत्र 1 जुलाई, 2000 से प्रारंभ होगा। इसमें प्राकृत संस्कृत, हिन्दी एवं अन्य भाषाओं / विषयों के प्राध्यापक अपभ्रंश, प्राकृत शोद्यार्थी एवं संस्थानों में कार्यरत विद्वान इसमें सम्मिलित हो सकेंगे। नियमावली एवं आवेदन पत्र दिनांक 15 मार्च से 31 मार्च 2000 तक अकादमी कार्यालय, दिगम्बर जैन नसिया भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड जयपुर - 4 से प्राप्त करें। कार्यालय में आवेदन पत्र पहुंचने की अंतिम तारीख 15 मई 2000 है।

■ डा. कमलचन्द सोगानी, संयोजक

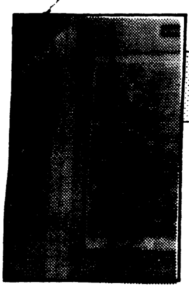

मत - अभिमत

'अर्हत् वचन' शोध परक उत्कृष्ट पत्रिका है। आपका सम्पादकीय सामयिक सन्दर्भों पर प्रशंसनीय है। अभी 21वीं शताब्दी के लिये पूरा एक वर्ष बाकी है। मैं आपके इस निष्कर्ष से सहमत हूँ।

श्री ऋषभदेव - महावीर महा महोत्सव का सुझाव भी अत्यन्त व्यवहारिक है।

9.1.2000

■ लालचन्द जैन 'राकेश'
सेवानिवृत्त प्राचार्य,
नेहरू चौक, गली नं. 4,
गंजबासोदा (विदिशा)

सहस्राब्दी संबंधी आपका आलेख साहसिक और सत्य परक है।

इस बार की पाठकीय प्रतिक्रियाएँ काफी तीखी हैं। आलोचना आसान है। सृजन में समय एवं शक्ति लगती है, फिर भी सच्ची समालोचना भ्रम निवारक ही होती हैं, परन्तु यह तथ्य परक होनी चाहिये।

विद्वान पाठक श्री सूरजमलजी जैन ने कई मूलभूत मुद्दे उठाये हैं, परन्तु बिना किसी विवेचना के समस्त लेखों को जिस तरह से खींचतान, तोड - मरोड़, अतार्किक सिद्ध कर दिया है, वह अत्यन्त दुखद है।

10.1.2000

■ अजित जैन 'जलज'
वीर मार्ग, ककरवाहा,
टीकमगढ़

अर्हत् वचन का अंक मिला। प्रसन्नता हुई। अर्हत् वचन के लेख असाधारण तथा गंभीर हैं, यही इसकी विशेषता है। अर्हत् वचन में प्रकाशित समाचारों से प्रतीत होता है कि जैन संस्कृति की भावी दिशायें उज्जवल हैं और समाज में जागरण आ रहा है। विद्वानों के साथ - साथ समाज के प्रत्येक घटक को संस्कृति के प्रति जागरूक बनाने का प्रयास आपके द्वारा हो रहा है, यह स्तुत्य है।

12.1.2000

■ महावीर राज गेलरा,
पूर्व कुलपति - जैन विश्व भारती संस्थान,
5 सी.एच. / 20, जवाहर नगर,
जयपुर

A very highly planned and organised effort to place literature on various fronts of Jain philosophy, culture, heritage, art & architecture at one place. I wish it a success and spiritual support.

29.1.2000

■ Surendra Kumar Jain
Dy. Secretary, Govt. of India, Education Deptt.
Secretary, B.D.J. Tirthkshetra Committee,
Mumbai

We highly appreciate the excellent work.

29.1.2000

■ Suresh Jain, I.A.S., Vimal Jain
30, Nishat Colony, **Bhopal**

आज ज्ञानपीठ में आकर एवं यहाँ की गतिविधियाँ देखकर बेहद प्रभावित हुआ। इतनी सारी जैन पत्रिकाओं का एक जगह संकलन एवं चारों अनुयोगों से संदर्भित शोध साहित्य तथा उनका आधुनिक शैली में कम्प्यूटराइजेशन सुखद है। मैं संस्था के उज्जवल भविष्य की मंगल कामना करता हूँ।

24.2.2000

■ चिरंजीलाल बगड़ा, सम्पादक - दिशा बोध
46, स्ट्रेण्ड रोड़, तीसरी मंजिल,
कलकत्ता - 700 007

जैन जगत की अपूरणीय क्षति

आचार्य श्री आर्यनन्दिजी महाराज का समाधिमरण

परम पूज्य आचार्य श्री समन्तभद्रजी के शिष्य पूज्य आचार्य श्री आर्यनन्दिजी महाराज की समाधि ९५ वर्ष की आयु में महाराष्ट्र प्राप्त के अन्तर्गत लातूर जिले के निकट दि. जैन गुरुकुल - नवागढ़ में सम्पन्न हुई। शाश्वत तीर्थ श्री सम्मेदशिखर के विकास एवं अ. भा. दि. जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी द्वारा हस्तगत तीर्थों के विकास के पुनीत कार्य को अपना आशीर्वाद एवं सक्रिय सहयोग प्रदान करने वाले वयोवृद्ध आचार्यश्री को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की विनम्र श्रद्धांजलि।

डा. दरबारीलालजी कोठिया का समाधिमरण

जैन दर्शन के मूर्धन्य विद्वान, राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित डा. **दरबारीलाल कोठिया** का संतशिरोमणि **आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज** के ससंघ सान्निध्य में ८४ वर्ष की आयु में दिगम्बर जैन सिद्धोदय तीर्थ क्षेत्र, नेमावर में समाधिमरण हुआ। आषाढ़ कृष्ण द्वितीया, वि.सं. १९७३, तदनुसार दिनांक ११.६.१९१६ को नैनागिरि में जन्में डा. कोठिया पपौरा, मथुरा, सरसावा, दिल्ली, बड़ौत आदि में अपनी सेवायें देने के उपरान्त १९७० से १९७४ तक काशी हिन्दू वि.वि. में जैन बौद्ध दर्शन विभाग में रीडर पद पर कार्यरत रहकर सेवानिवृत्त हुए। गृहस्थाश्रम के दायित्वों का सजगता से निर्वाह करते हुए आपने जैन जगत को अध्यात्म कमल मार्तण्ड, न्याय दीपिका, आत्मपरीक्षा, सिरपुर पार्श्वनाथ स्तोत्र, शासन चतुश्त्रिंसिका, स्याद्वाद सिद्धि, प्राकृत पद्यानुक्रमणी, प्रमाण प्रमेय कलिका, समाधिमरणोत्साह दीपक, द्रव्य संग्रह, जैन तर्क शास्त्र में अनुमान विचार, प्रमाण परीक्षा, जैन दर्शन औंर प्रमाण शास्त्र परिशीलन, जैन तत्व ज्ञान मीमांसा, जैन न्याय की भूमिका, जैन पुराण कोष आदि बहुमूल्य कृतियाँ दीं।

डा. कोठिया कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परामर्शदात्री समिति के माननीय सदस्य रहे हैं। उनको ज्ञानपीठ की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।

श्री कैलाशचन्द सेठी का निधन

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट के ट्रस्टी एवं वयोवृद्ध समाजसेवी श्री कैलाशचन्द सेठी का ११ जनवरी २००० को निधन हो गया। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में आंयोजित श्रद्धांजलि सभा में उनकी सामाजिक सेवाओं का स्मरण करते हुए दिवंगत आत्मा की शीघ्र मुक्ति की प्रार्थना की गई।

प्रो. जमनालाल जैन का निधन

प्रसिद्ध जैन विद्वान तथा प्रबन्ध अध्ययन संस्थान, देवी अहिल्या वि.वि. के पूर्व निदेशक **प्रो. जमनालाल जैन** का फरवरी २००० में संक्षिप्त बीमारी के बाद ७६ वर्ष की आयु में निधन हो गया। उनके निधन से जैन समाज ने एक स्पष्टवादी, निर्भीक, स्वाध्याय प्रेमी जैन विद्वान को खो दिया।

ज्ञानपीठ परिवार की विनम्र श्रद्धांजलि।

तीर्थंकर ऋषभदेव जन्म जयन्ती

(चैत्र कृष्ण नवमी, 29 मार्च 2000)

के पुनीत अवसर पर

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

द्वारा आयोजित

ऋषभदेव संगोष्ठी

एवं

पुरस्कार समर्पण समारोह

प्रस्तावित कार्यक्रम

दिनांक 28 मार्च 2000, मंगलवार

प्रात: 8.00 से 10.00 : ऋषभदेव संगोष्ठी का उद्घाटन एवं आमंत्रित व्याख्यान

प्रात: 10.15 से 12.00 : परिचर्चा - जैन पांडुलिपियों का सूचीकरण : समस्यायें एवं निदान

अपरान्ह 3.00 से 5.00 : संगोष्ठी द्वितीय सत्र : आमंत्रित व्याख्यान

रात्रि 7.30 से 8.30 : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ निदेशक मण्डल की बैठक

रात्रि 8.30 से 9.30 : अर्हत् वचन सम्पादक मंडल की बैठक

दिनांक 29 मार्च 2000, बुधवार

प्रात: 8.00 से 10.00 : पुरस्कार समर्पण समारोह (वर्ष 1998 के ज्ञानोदय एवं अर्हत् वचन पुरस्कारों का समर्पण / कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार 98 का समर्पण भी संभावित)

प्रात: 10.15 से 12.00 संगोष्ठी समापन सत्र

मध्यान्ह 2.00 बजे : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परामर्श दात्री समिति की बैठक

स्थान :सभी कार्यक्रम कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (दि. जैन उदासीन आश्रम 584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज) इन्दौर के परिसर में स्थित नवसज्जित एवं विस्तरीकृत त्रिलोक भवन (सभागार) में सम्पन्न होंगे।

आप सादर आमंत्रित हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल	प्रो. नवीन सी. जैन	डा. अनुपम जैन
अध्यक्ष	मानद निदेशक	मानद सचिव

Filling hearts with happiness and minds with memories.

It has been 50 glorious years and this

is just the beginning of our journey.

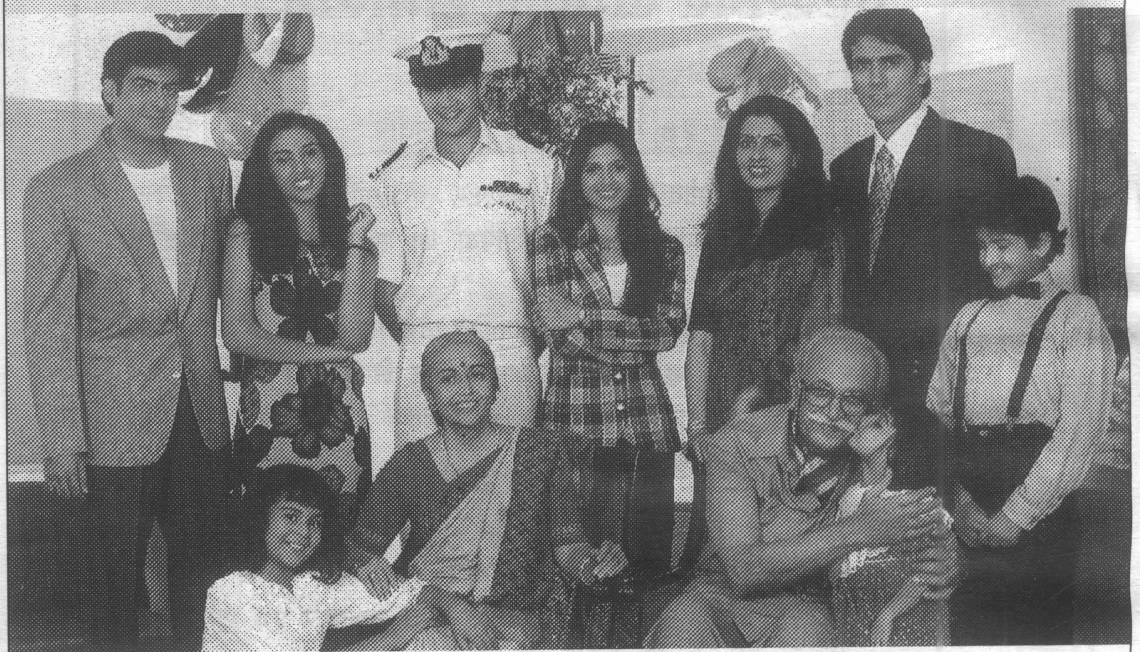

S. Kumars®

FABRIC OF A GOLDEN INDIA

• PREMIUM SUITINGS • SHIRTINGS • SAREES • DRESS MATERIALS • SCHOOL UNIFORMS
• WORK WEAR • WORSTEDS • HOME LINEN • TERRY TOWELS

Visit us at : http://www.skumars.com

PERCEPT/SK-838

समवसरण श्रीविहार के मध्यप्रदेश प्रान्तीय प्रवर्तन के समापन (16.1.2000) पर तिलकनगर, इन्दौर में आयोजित शोभायात्रा में पूज्य उपाध्याय मुनि श्री निजानन्दसागरजी महाराज ससंघ तथा प्रवर्तन समिति के सदस्यगण।

16 जनवरी 2000 को आयोजित धर्मसभा में श्रीविहार के उद्देश्यों को स्पष्ट करते केन्द्रीय प्रचार मंत्री डॉ. अनुपम जैन। मंचासीन श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल एवं प्रवर्तन समिति के पदाधिकारी।

(समाचार पृ. 95 पर)

ऋषभदेव जैन मेला (दिल्ली, 4-10 फरवरी 2000) में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा संयोजित पेवेलियन नं.5 में जैन साहित्य एवं पत्र-पत्रिका प्रदर्शनी का एक दृश्य।

I.S.S.N. 0971 - 9024

अर्हत् वचन भारत सरकार के समाचार - पत्रों के महापंजीयक से प्राप्त पंजीयन संख्या 50199 / 88

स्वामित्व श्री दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की ओर से देवकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर से प्रकाशित एवं **सुगन ग्राफिक्स,** सिटी प्लाजा, म.गा. मार्ग, इन्दौर द्वारा मुद्रित।

मानद् सम्पादक - **डॉ. अनुपम जैन**